Con. 3.VII. 17. 48
350

अंक 7
संख्या 17

बुधवार,
1 दिसम्बर,
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा—(जारी)..... 1083-1158
[अनुच्छेद 12 तथा 13 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 1 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टिट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः साढ़े नौ बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष-पद पर आसीन थे।

विधान का मसौदा—(जारी)

अनुच्छेद 12—(जारी)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान् आज का कार्य आरम्भ होने के पूर्व क्या मैं आपसे प्रार्थना कर सकता हूं कि मेरे विद्वान् मित्र श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर को, जिनसे प्रायः अपने अवस्था जन्य अनुभव के आधार पर परामर्श देने के लिये आग्रह किया जाता है, सभा के मध्य में कोई ऐसा स्थान दिया जाये जो न बहुत दाहिने को हो और न बायें को ताकि सभा में सभी लोग उनकी बातें सुन सकें और समझ सकें।

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): सभा की इच्छा को पूर्ण करने का प्रयास किया जायेगा।

हमने अनुच्छेद 12 पर विचार-विमर्श समाप्त कर दिया था और डॉ. अम्बेडकर ने उत्तर भी दे दिया था। मुझे खेद है कि मैं उन सदस्यों की इच्छा पूरी नहीं कर सकता जो उस पर फिर विचार-विमर्श आरम्भ करना चाहते हैं। अब मैं विभिन्न संशोधनों पर यथाक्रम मत लूंगा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'title' (उपाधि) शब्द के बाद 'not being a military or academic distinction' (अतिरिक्त उस उपाधि के जो सैन्य सम्बन्धी हो अथवा सांस्कृतिक हो) शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'be conferred' (प्रदान) शब्दों के बाद 'or recognized' (अथवा स्वीकृत) शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'State' (राज्य) शब्द के बाद (हिन्दी रूपान्तर में खण्ड के अन्त में) 'and the State shall in no way recognize any title conferred by the British Government on any citizen of India prior to August 15, 1947' (और राज्य 15 अगस्त सन् 1947 ई. के पूर्व भारत के किसी नागरिक को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि को किसी प्रकार भी स्वीकार न करेगा) शब्द जोड़ दिये जायें।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (1) में 'conferred' (प्रदान) शब्द के बाद 'or recognized' (अथवा स्वीकृत शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित खण्ड रखा जाये:

'(2) No title conferred by any foreign State on any citizen of India shall be recognized by any State.'

(भारत के किसी नागरिक को किसी विदेशी राज्य द्वारा प्रदत्त उपाधि को कोई भी राज्य स्वीकार न करेगा।)

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 12, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 12, संशोधित रूप में, विधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 13

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 13 पर विचार करेंगे।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 13 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'13. Subject to public order or morality, the citizens are guaranteed—

(a) freedom of speech and expression;

(b) freedom of the press;

(c) freedom to form association or unions;

(d) freedom to assemble peaceably and without arms;

(e) secrecy of postal, telegraphic and telephonic communications.

'13-A. All citizens of the Republic shall enjoy freedom of movement throughout the whole of the Republic. Every citizen shall have the right to sojourn and settle in any place he pleases. Restrictions may, however, be imposed by or under a Federal Law for the protection of aboriginal tribes and backward classes and the preservation of public safety and peace.'

[13. लोक-व्यवस्था अथवा लोक-शील के अधीन नागरिकों को निम्नलिखित अधिकारों की प्रत्याभूति दी जाती है—

(क) भाषण और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य;

(ख) समाचार-पत्रों का स्वातंत्र्य;

(ग) पार्षद् अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य;

(घ) शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का स्वातंत्र्य;

(ङ) डाक, तार और दूरभाष संचार की गोपनीयता।

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

13-क. गणराज्य के समस्त नागरिकों को गणराज्य में सर्वत्र अबाध पर्यटन का अधिकार होगा। प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान में निवास करने और बस जाने का अधिकार होगा। किन्तु आदिवासी जातियों और पिछड़े हुये वर्गों के रक्षार्थ तथा लोक-क्षेत्र और शांति के परीक्षणार्थ संधान के कानून द्वारा अथवा उसके अधीन आरक्षण आरोपित किये जा सकते हैं।]"

श्रीमान्, अनुच्छेद 13 की वर्तमान शब्दावली बेढंगी है। उसमें एक महत्वपूर्ण विषय अर्थात् समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का कोई उल्लेख नहीं है। श्रीमान्, मेरे विचार से इसके विरुद्ध यह तर्क उपस्थित किया जायेगा कि यह स्वातंत्र्य खण्ड (क) में अर्थात् भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य में सन्निहित है। परन्तु श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि वर्तमान युग समाचार-पत्रों का युग है और समाचार-पत्र उत्तरोत्तर प्रबल होते जा रहे हैं। इसलिये उचित तो यह होगा कि समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य का पृथक् रूप से और स्पष्ट रूप से उल्लेख हो।

श्रीमान्, अनुच्छेद 13 में भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य की, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन के स्वातंत्र्य की, पार्षद् अथवा संघ बनाने के स्वातंत्र्य की, भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में अबाध पर्यटन के स्वातंत्र्य की, भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने के स्वातंत्र्य की, सम्पत्ति के अवापन, संधारण और यापन के स्वातंत्र्य की और कोई व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य अथवा व्यापार करने के स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी गई है। यद्यपि इस अनुच्छेद में इन सब बातों की प्रत्याभूति दी गई है किन्तु इस प्रत्याभूति से किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन में कोई प्रभाव न पड़ेगा और न राज्य के लिये लोक-व्यवस्था के हित में कानून बनाने में कोई अवरोध होगा। श्रीमान, वास्तव में इस अनुच्छेद में भाषण और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की जो प्रत्याभूति दी गई है उससे किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा अथवा न उससे राज्य के लिये अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, राजद्रोह अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात के सम्बन्ध में कानून बनाने में कोई अवरोध होगा। इसलिये श्रीमान्, यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 13 में जिन अधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है उनका

उसी अनुच्छेद की धारा से खण्डन हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्हें विधान-मण्डल की स्वेच्छाचारिता के अधीन कर दिया गया है। श्रीमान्, इन प्रत्याभूतियों का यह कहकर भी खण्डन कर दिया गया है कि शिष्टता तथा शील और राज्य के प्राधिकार अथवा आधार को जर्जर बनाने के सम्बन्ध में अपराधों को रोकने के लिये वर्तमान कानून प्रवर्तन में रहेगा। यह बहुत ही मोटे शब्दों में प्रावहित किया गया है। इस प्रकार यद्यपि एक ओर कुछ स्वतंत्रतायें दी गई हैं तो दूसरी ओर जैसा कि मैंने बताया है, उसी अनुच्छेद द्वारा उनका अपहरण कर दिया गया है। "राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने" के अपराध को रोकने के लिये अभिरक्षण की व्यवस्था करना एक लम्बी-चौड़ी बात है जिससे भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का मूलाधिकार ही वास्तव में अप्रभावी हो जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूषित विदेशी राज के अधीन समाचार-पत्रों को जितनी स्वतंत्रता प्राप्त थी उससे अधिक विधान के मसौदे के अधीन उपलब्ध होने वाली नहीं है और चाहे राजद्रोह सम्बन्धी किसी कानून द्वारा नागरिकों के अधिकारों का कितना ही हनन क्यों न हो, उस कानून के निराकरण के लिये उन्हें कोई भी साधन प्राप्त न होंगे।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, 'जन-सामान्य के हितों के लिये' शब्द बहुत विस्तृत हैं और इनके आधार पर विधायी तथा अधिशासी प्राधिकारी मनमाने ढंग से काम करने लगेंगे। सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी के श्री एस.के. वाजे ने इस अनुच्छेद की आलोचना करते हुये यह ठीक ही कहा है कि यदि सरकार का बुरा उद्देश्य प्रमाणित न हुआ, जोकि वास्तव में कभी प्रमाणित हो भी नहीं सकता, तो सर्वोच्च न्यायालय के लिये आयंत्रण लगाने वाले कानून का समर्थन करने के अतिरिक्त और कोई चारा न रह जायेगा। आगे चल कर, श्रीमान् विधान के मसौदे में प्रधान को यह भी अधिकार दिया गया है कि जब कभी वे यह समझें कि भारत की सुरक्षा, युद्ध के भय के कारण अथवा देश के अन्दर हिंसापूर्ण कार्यों के कारण, संकट में है तो वे सद्यस्कृत्यस्थिति सम्बन्धी उद्घोषणायें कर सकते हैं। इस परिस्थिति में प्रधान को नागरिक स्वतंत्रता का अपहरण करने का अधिकार है।

श्रीमान्, नागरिक स्वतंत्रताओं का अपहरण सैन्य कानून के प्रवर्तन के समान ही है। संयुक्त राज्य अमेरिका तक में नागरिक स्वतंत्रताओं का कभी अपहरण नहीं होता। आक्रमण अथवा विद्रोह की स्थिति में वहां केवल वंद्युपस्थापन के अधिकार का अपहरण होता है। यद्यपि इस अनुच्छेद में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य प्रदान किया गया है परन्तु उस पर विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग स्वेच्छा से आयंत्रण लगा

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

सकते हैं क्योंकि उनको विधान-मण्डल के सत्रों के मध्य में किसी वैधानिक प्रावधान द्वारा अबाध रूप से अध्यादेशों को प्रवर्तन में लाने का अधिकार प्राप्त है। इसलिये मूलाधिकारों को केवल विधान-मण्डल के ही नहीं बल्कि अधिशासी-वर्ग के अधिकार-क्षेत्र की परिधि के बाहर होना चाहिये। श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने नागरिक स्वतंत्रताओं पर आयंत्रणों का समर्थन करते हुये यह मत प्रकट किया था कि अन्तिम रूप से नागरिक स्वतंत्रताओं की परिभाषा करने और सर्वोच्च न्यायालय पर इसके लिये निर्भर रहने के बजाय कि वह पुलिस की शक्तियों के सिद्धान्त को निश्चित करे, मसौदा-समिति ने राज्य को ही इस योग्य बना दिया है कि वह सीधे-सीधे नागरिक स्वतंत्रताओं को सीमित कर दे। यदि हम संयुक्त राज्य अमेरिका की पुलिस की शक्तियों के कानून का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि विधान के मसौदे में जो आयंत्रण रखे गये हैं वे संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा प्रावहित आयंत्रणों से कहीं अधिक व्यापक हैं। विधान के मसौदे के अनुसार राजद्रोह सम्बन्धी कानून, सरकारी गोपनीय बातों से सम्बन्धित अधिनियम आदि दमन में सहायक कानून उसी प्रकार बने रहेंगे जैसे कि वे इस समय हैं। यदि इस देश के लोगों को पुलिस की शक्तियों के अधीन पूर्ण नागरिक स्वतंत्रतायें प्रदान करनी हैं तो दमन में सहायक सभी कानूनों को, जिसमें राजद्रोह सम्बन्धी कानून भी सम्मिलित है, या तो समाप्त करना होगा या उनमें सारभूत परिवर्तन करने होंगे और सरकारी गोपनीय बातों से सम्बन्धित अधिनियम के भी एक भाग को समाप्त करना होगा। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि इस अनुच्छेद में सारभूत परिवर्तन करने चाहियें और मैंने जिस प्रवेष्टि का सुझाव रखा है उसे इसके स्थान पर रख देना चाहिये। श्रीमान्, मुझे आशा है कि यह सभा मेरे प्रस्ताव पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। यदि विधान के मसौदे द्वारा हमें जो कुछ भी मूलाधिकार प्राप्त हों उन्हें जहां-तहां खण्डित कर दिया गया और इस प्रकार यदि लोगों को पूर्ण नागरिक स्वतंत्रतायें प्राप्त न हुईं तो, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मूलाधिकारों की सुखद प्राप्ति अभी दूर ही रहेगी और इस विधान-निर्माण से इस देश को कुछ भी लाभ न होगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह मान लूं कि 441वां संशोधन उपस्थित नहीं किया जायेगा? मैं किसी प्रकार के वादानुवाद की आज्ञा नहीं देता परन्तु मैं उस पर मत लूंगा। क्या मैं यह मान लूं कि संशोधनकर्त्ता इसे उपस्थित नहीं करना चाहते हैं?

(संशोधन संख्या 441 उपस्थित नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 413 और 414 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 415 और 418 । वे एक समान हैं। मैं संशोधन संख्या 415 को उपस्थित करने की आज्ञा देता हूं। वह पण्डित लक्ष्मीकांत मैत्र तथा अन्य लोगों के नाम से है जिनमें श्री कामत भी हैं।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) से 'Subject to the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस धारा के (2), (3), (4), (5) और (6) खण्डों में कई प्रावधानों का उल्लेख है। इसलिये 'Subject to the other provisions of this article'] (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये) शब्द अनावश्यक हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन मसौदे में सुधार करने के सम्बन्ध में है।

***उपाध्यक्ष:** श्री चट्टोपाध्याय, आप आगे बढ़िये।

***श्री मिहिरलाल चट्टोपाध्याय:** इसके अतिरिक्त चूंकि यह अनुच्छेद मूलाधिकारों के सम्बन्ध में है इसलिये इसके आरम्भ में इन अधिकारों और स्वत्वों की निश्चित रूप से गणना होनी चाहिये और आरम्भ में ही परादिक न होने चाहियें। प्रत्येक परादिक को यथाक्रम स्थान मिलना चाहिये। इसलिये मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

(संशोधन संख्या 419 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** अब हम संशोधन संख्या 416 पर आते हैं जो प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) में 'the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के) शब्दों के स्थान में

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

'this Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force' (इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा इससे सम्मत किसी समय प्रयुक्त कानूनों के) शब्द रखे जायें और 'all citizens shall have' (सब नागरिकों को) शब्दों के बाद 'and are guaranteed' (और यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

" 'Subject to this Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force, all citizens shall have and are guaranteed the right, etc.' "

(इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये अथवा इससे सम्मत कानूनों के, जो किसी समय प्रयुक्त हों, अधीन रहते हुये सब नागरिकों को यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह अधिकार होगा—इत्यादि।)

श्रीमान्, इस संशोधन को उपस्थित करके मैं यह बताना चाहता हूं कि यदि जिन स्वतंत्रताओं की इस अनुच्छेद में गणना की गई है। उन्हें केवल इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुसार होना है और केवल इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन ही उनकी प्रत्याभूति दी जाने वाली है, तो इससे स्वतंत्रता के वचन अथवा आश्वासन मिलने के बजाय उसका अधिक अंश में निराकरण हो जाता है क्योंकि प्रत्येक खण्ड में मुख्य प्रावधान के बजाय अपवादों पर अधिक जोर दिया गया है। वास्तव में एक दांयें हाथ से जो कुछ दिया गया है उसे तीन या चार या पांच बांयें हाथों से छीन लिया गया है। इसलिये मेरे विचार से यह अनुच्छेद निराकरणमूलक हो गया है।

मेरा यह विश्वास है कि न यह उद्देश्य था और न यह अर्थ ही था, जिन मसौदाकारों ने अन्य अनुच्छेदों को भी रखा है, उनका यह आशय अथवा उद्देश्य न था कि यह अनुच्छेद निराकरणमूलक हो जाये। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इसको इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन करने के बजाय हमें इसे विधान के प्रावधानों के अधीन करना चाहिये। अर्थात् इस विधान में यह अनुच्छेद स्थित रहेगा। यदि आप इन अपवादों पर जोर देना चाहते हैं तो अपवाद भी स्थित रहेंगे। परन्तु इससे विधान की भावना, विधान की आधारभूत विचारधारा को सर्वोपरिता

मिल जायगी। मेरा यह नम्र निवेदन है कि यदि आप इस अनुच्छेद पर ही जोर देंगे तो यह न हो सकेगा। यदि आप केवल 'इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन' शब्द कहते हैं तो आप स्पष्टत: इस पर जोर देते हैं और इसे आवश्यक बना देते हैं कि यह अनुच्छेद स्वतंत्र रूप से पढ़ा जाये और केवल यही पढ़ा जाये यद्यपि यह आवश्यकता से अधिक आयंत्रण-मूलक है। मैं जानता हूं कि यह कहा जा सकता है कि निर्वचन के नियमों के अनुसार सारे विधान को पढ़ने की आवश्यकता होगी और उसके केवल एक खण्ड को पढ़ लेना पर्याप्त न होगा। यदि यह बात है तो मैं यह पूछता हूं कि अन्य अनुच्छेदों के समान इस अनुच्छेद में भी इन शब्दों को रखने में क्या हानि है—"subject to the provisions of this Constitution" (इस विधान के प्रावधानों के अधीन) और "subject also to the laws in force at any time and the laws thereunder" (इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा किसी समय प्रयुक्त कानूनों के भी अधीन)? इस अनुच्छेद के अधीन अथवा किसी अन्य अनुच्छेद के अधीन जो कानून निराकृत न हो गये हों अथवा जिनका उत्सादन न हो गया हो, वे प्रयुक्त रहेंगे। इस अनुच्छेद के अनुसार जो नये कानून आप बनायेंगे वे भी प्रयुक्त रहेंगे, जिससे इस विधान द्वारा जिन स्वतंत्रताओं को प्रदान किया गया है अथवा जिनकी प्रत्याभूति दी गई है उनके खण्डन को रोकने के लिये आप जितने भी अभिरक्षण चाहें रख सकेंगे।

फिर हम इसी अनुच्छेद की ओर क्यों ध्यान आकर्षित करें और इसी पर क्यों जोर दें यद्यपि इसमें, मैं इसे फिर कहूंगा, स्वतंत्रता के बजाय स्वतंत्रता पर आयंत्रण तथा अपवाद ही अधिक हैं? इस अनुच्छेद के एक ही उपखण्ड में 5, 6 अथवा 7 शीर्षक देकर इन स्वतंत्रताओं की संक्षेप में गणना कर दी गई है। अपवादों का पृथक् रूप से पृथक् उपखण्डों में उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उनकी परिधि इतनी विस्तृत बना दी गई है कि मेरी समझ में नहीं आता कि कौन-सी ऐसी बात है जो इन अपवादों में सम्मिलित नहीं की जा सकती है। वास्तव में इस अनुच्छेद द्वारा जिन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी गई है अथवा जिनका आश्वासन दिया गया है, वे इतने भ्रामक हो जाते हैं कि जब कभी राज्य अथवा प्राधिकारी किसी व्यक्ति को उनसे वंचित करना चाहेंगे तो उसे उन्हें देखने के लिए एक सूक्ष्मदर्शी यंत्र की आवश्यकता होगी। इसलिये मैं यह फिर कहूंगा कि आपको सारे विधान के प्रावधानों की, उसकी प्रस्तावना की तथा अन्य अनुच्छेदों और अध्यायों की ओर संकेत करना चाहिये जिससे इस विधान की भावना सरलता से तथा पूर्ण रूप से

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

समझ में आ सके और केवल इस अनुच्छेद की ओर संकेत न करना चाहिये क्योंकि मेरे विचार से यह विधान की भावना के प्रतिकूल है। किसी महोदय ने कल इस विधान को वकीलों का कल्पवृक्ष कहा था। सभी लिखित और अलिखित विधानों के आधार पर बहुत ही चित्ताकर्षक कानूनी वितंडावाद हो सकता है। साधारणतया संघानीय राज्यों के विधानों के सम्बन्ध में यह और भी अधिक हो सकता है। परन्तु चाहे यह जानबूझकर किया गया हो या अनजाने, विशेषत: यह मसौदा कानूनी वितंडावाद के लिये पूर्ण अवसर प्रदान करता है। निस्संदेह इससे जनसाधारण को हानि ही होगी। चाहे राज्य जीते या हारे कम से कम जनसाधारण को और देश को एक छोटे से वर्ग से अर्थात् वकीलों के वर्ग से हार खानी ही पड़ेगी।

मेरा यह भी सुझाव है कि इन स्वतंत्रताओं की केवल गणना करके यह कहना पर्याप्त न होगा कि ये नागरिकों को प्राप्त होंगी। मैं यह चाहता हूं कि ये शब्द भी जोड़े जायें कि इस विधान द्वारा इन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी जाती है। अर्थात् यदि कोई अपवाद किया जाये तो, जब तक वह सारे विधान और उसके प्रत्येक भाग के आशय के अनुसार न्यायसंगत न ठहराया जाये, वह इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत स्वतंत्रताओं का खण्डन करने वाला माना जायेगा।

उदाहरणार्थ उपखण्ड (5) की शब्दावली ऐसी व्यापक है कि अपवाद की परिधि के अन्दर सब कुछ आ जाता है जिसके फलस्वरूप एक बड़े खण्ड में जिन स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति दी गई है उनका व्यवहार में कोई प्रभाव नहीं रह जाता है। इसलिये मेरे विचार से यह आवश्यक है कि मैंने जिन शब्दों का सुझाव किया है उनको इस अनुच्छेद में स्थान दिया जाये, अर्थात् 'This Constitution and the laws thereunder or in accord therewith at any time in force' (इस विधान और इसके अधीन बनाये हुये कानूनों अथवा इससे सम्मत किसी समय प्रयुक्त कानूनों के) शब्दों को 'the other provisions of this article' (इस अनुच्छेद के अन्य प्रावधानों के) शब्दों के स्थान में रखा जाये और 'all citizens shall have' (सब नागरिकों को) शब्दों के बाद 'and are guaranteed' (यह प्रत्याभूति दी जाती है और यह) शब्द जोड़े जायें। मुझे आशा है कि यह संशोधन सभा को स्वीकार्य प्रतीत होगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 417 और 418 का आशय एक समान है। मैं संशोधन संख्या 417 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा दे सकता हूं। यह संशोधन मि. लारी के नाम से है।

***एक माननीय सदस्य:** वे सभा में उपस्थित नहीं हैं।

***उपाध्यक्ष:** तब संशोधन संख्या 418 उपस्थित किया जा सकता है। यह श्री मुकुट बिहारी लाल भार्गव के नाम से है।

संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 420, 421 और 424 का आशय समान है और मेरा यह सुझाव है कि सभा को उन पर एक साथ विचार करना चाहिये। मैं यह सुझाव करता हूं कि संशोधन संख्या 421 उपस्थित किया जाये। यह प्रोफेसर के. टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'expression, (हिन्दी में 'भाषण') शब्द के बाद 'of thought and worship, of press and publication' (विचारों की अभिव्यक्ति और उपासना तथा समाचार-पत्रों और प्रकाशन के) शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"Subject to other provisions of this article, all citizens shall have the right—

(a) to freedom of speech and expression of thought and worship; of press and publication;"

[इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अधीन रहते हुये सब जनपदों को अधिकार होगा—

(क) भाषण और विचारों की अभिव्यक्ति तथा समाचार-पत्रों और प्रकाशन के स्वातंत्र्य का;]

इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं यह देखकर चकित हुआ कि यह बातें छोड़ दी गई हैं। मैं यह नहीं जानता कि नागरिक स्वतंत्रताओं के ये महत्त्वपूर्ण अंश जानबूझकर छोड़ दिये गये अथवा अनजाने। खण्ड में केवल भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का उल्लेख है। मेरी समझ में नहीं आता कि मसौदाकार के मस्तिष्क में किस प्रकार का भाषण-स्वातंत्र्य था जब कि वे अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का पृथक् रूप से उल्लेख करते हैं। मेरे विचार से भाषण और अभिव्यक्ति बहुत-कुछ एक साथ चलते हैं। सम्भवत:

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

'expression' (अभिव्यक्ति) शब्द अधिक व्यापक हो क्योंकि इसमें चित्र अथवा ऐसी कलाओं की अभिव्यक्ति भी सम्मिलित है जिनका माध्यम केवल शब्द अथवा भाषण नहीं है। यदि यह माना जाये कि 'expression' (अभिव्यक्ति) शब्द रखने के सम्बन्ध में यही व्याख्या की जा सकती है, अथवा इसी प्रकार पुष्टि की जा सकती है, तो फिर भी मेरी समझ में नहीं आता है कि आराधना के स्वातंत्र्य को क्यों छोड़ दिया गया है। मैं स्वयं कोई बहुत आराधना करने वाला व्यक्ति नहीं हूं। वास्तव में मैं प्रत्यक्ष में आराधना अथवा प्रेम नहीं करता परन्तु मेरा यह विचार है कि अधिकांश लोग आराधना की आवश्यकता अनुभव करते हैं और आराधना के उद्देश्य से कई कार्य करते हैं। यदि विधान में यह स्पष्ट न किया गया कि इसकी भी स्वतंत्रता है, तो इस स्वतंत्रता को सीमित किया जा सकता अथवा लोग इससे वंचित किये जा सकते हैं। स्वतंत्रता से आराधना करने के सम्बन्ध में ही सब धार्मिक लड़ाइयां लड़ी गईं और मसौदाकार इसे भली-भांति जानते होंगे कि वे इस समय भी लड़ी जा रही हैं। लगभग 300 वर्ष पूर्व अमेरिका के वर्तमान संघ के जन्मदाताओं को अपने घर में आराधना की स्वतंत्रता न मिलने के कारण ही संयुक्त राज्य अमेरिका अस्तित्व में आया। इसी कारण अधिकांश आधुनिक विधानों में आराधना की स्वतंत्रता का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। इसलिये मेरी यह धारणा है कि यदि इस सम्बन्ध में अधिक कुछ न कहा जाये तो इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इसे छोड़ दिया गया है। जब तक मसौदा-समिति तर्कपूर्ण और प्रभावपूर्ण ढंग से यह न समझा सके कि यह क्यों छोड़ दिया गया है, मैं यह तो कहूंगा कि हमारा विधान अपूर्ण है और यदि इसे सम्मिलित न किया गया तो नागरिक स्वतंत्रताओं के एक महत्वपूर्ण अंग के सम्बन्ध में अपूर्ण ही रहेगा।

'समाचार-पत्रों और प्रकाशन की स्वतंत्रता' के सम्बन्ध में भी यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। वास्तव में इससे भी बलशाली तर्क उपस्थित किया जा सकता है। यह सभी को विदित है कि सभी विधानों के सम्बन्ध में और सभी ऐसे देशों में जहां उदार विधान प्रयुक्त है, समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में भी बहुत ही कटु वैधानिक संघर्ष हुआ है। बहुत त्याग और बलिदान के उपरान्त ही उसकी प्राप्ति हुई है। उन देशों में अब वह प्राप्त हो चुकी है और उसका प्रतिष्ठित स्थान है। कुछ देशों के लिखित विधान नहीं हैं तो वह वहां की प्रथाओं और न्यायालयों के निर्णयों के अनुसार प्राप्त हैं। जिन देशों के लिखित विधान हैं उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है।

यदि मुझे ठीक स्मरण है—मेरी त्रुटि ठीक की जा सकती है यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता न होगी—संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को प्रमुख स्थान दिया गया है और उसका विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता कि हमारे मसौदाकारों ने इसे क्यों छोड़ दिया है। मेरे विचार से कुछ विशेष कारणों को ध्यान में रख कर ही उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का मसौदे में उल्लेख में किया होगा। परन्तु जब तक वे उन्हें बतायें नहीं और इसे समझायें नहीं कि उसे छोड़ क्यों दिया है, मेरा यह विचार है कि जिस प्रकार के संशोधन का मैंने प्रस्ताव किया है वह बहुत ही आवश्यक है।

समाचार-पत्रों की कटु आलोचना की जा सकती है। मेरे विचार से समाचार-पत्रों ने कई बार पदारूढ़ अधिकारियों की दृष्टि से न्यायोचित सीमाओं का उल्लंघन किया है। परन्तु यदि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमाबद्ध करने के लिये कोई कानून बनाया गया तो उसे 'काला कानून' ही कहा जायेगा जैसा कि उसे हमारे एक वर्तमान मंत्री महोदय ने विधान-मंडल के अन्तिम अधिवेशन से पहले अधिवेशन में बताया था जब कि एक विशेष परिस्थिति में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को सीमित करने का प्रयास किया जा रहा था। यद्यपि उनसे कई बातों में मेरा मतैक्य नहीं था परन्तु इससे उनके प्रति मेरे हृदय में प्रेम उमड़ आया। विधेयक के तीसरे पाठ में भी वे अकेले विरोध करते रहे और मैंने यह अनुभव किया कि उन्होंने बहुत बड़ी सेवा की।

इस सभा में ऐसे लोगों के उपस्थित होते हुए भी मुझे आश्चर्य है कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का कोई उल्लेख नहीं किया गया है और विधान में एक बहुत बड़ी कमी रहने दी गई है। यह मेरी कल्पना के बाहर है कि हमारे अनुभवी मसौदाकारों ने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का उल्लेख क्यों नहीं किया क्योंकि इसका किसी प्रावधान में उल्लेख न करके यदि कभी किसी प्रथा अथवा किसी कानून के आशय के अनुसार इसे स्थान देने का प्रश्न उठेगा तो यह स्वतंत्रता विधान को व्यवहार में लाने वाले लोगों की दया पर ही निर्भर रहेगी। मैं फिर यह कहूंगा कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को भ्रमवश स्वच्छन्दता समझा जा सकता है और अवश्य ही यह इच्छा होती है कि उसे रोका जाये। यदि इस स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता का रूप दिया गया तो उसे सीमाबद्ध करने के लिये कई प्रकार से कानून बनाये जा सकते हैं अथवा कानूनों को कई प्रकार से व्यवहार में लाया जा सकता है। मैं सच्चे हृदय से फिर यह कहूंगा कि यदि इसका उल्लेख

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

न किया गया तो एक बहुत बड़ा दोष रह जायेगा। आप सभा में बहुमत में होने के कारण इसे बनाये रख सकते हैं परन्तु यदि आप मेरे संशोधन को अस्वीकार करने पर जोर देंगे तो आप संसार को कभी भी यह समझाने में सफल न होंगे कि आपका विधान एक उन्नतिशील, उदार विधान है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 420, क्या इसे उपस्थित किया जा रहा है?

(मि. नजीरुद्दीन अहमद अपनी जगह पर बोलने के लिये खड़े हुये।)

आप यहां आने का कष्ट न करें। मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि क्या आप इसे उपस्थित करना चाहते हैं? क्योंकि यदि आपको ऐसी इच्छा हो तो मैं इस पर मत लूंगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं इस पर बोलना चाहता हूं।

***उपाध्यक्षः** आप इस पर सामान्य वादानुवाद के समय बोल सकते हैं परन्तु शर्त यह है कि आपको इसके लिये अवसर मिले।

आपने मुझे निर्णय करने का अधिकार दिया है। आप कृपा करके बैठ जाइये। उस पर मत लिया जायेगा।

श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः श्रीमान्, क्या बिना वादानुवाद हुए ही?

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 422 ।

(श्री लक्ष्मीनारायण साहू मंच पर आये।)

आपको बोलने की आज्ञा नहीं दी जाती। क्या आप उसे उपस्थित करना चाहते हैं?

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): जी हां।

(संशोधन संख्या 424 उपस्थित नहीं किया गया।)

उपाध्यक्षः संशोधन संख्या 423 की आज्ञा नहीं दी जाती।

(संशोधन संख्या 425 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 426 ।

ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर (पूर्वी पंजाब : सिख): यह अमेण्डमेण्ट आर्टिकल 19 क्लाज़ 1 एक्सप्लेनेशन 1 से कवर हो जाती है। इसलिये मैं इसे मूव नहीं करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** वे क्या कह रहे हैं? मैं समझ नहीं पा रहा हूं।

***एक माननीय सदस्यः** वे संशोधन को नहीं उपस्थित कर रहे हैं।

(संशोधन संख्या 427 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 428, 429, 430 और 432 का आशय समान है। इसलिये इन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन संख्या 428 उपस्थित किया जा सकता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, क्या मैं सभी संशोधनों को उपस्थित करूं और उन सभी पर बोलूं?

***उपाध्यक्षः** केवल संशोधन संख्या 428 पर।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** क्या अन्य सभी पर मत लिया जायेगा?

***उपाध्यक्षः** अवश्य।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ग) के अन्त में (हिन्दी रूपान्तर में आरम्भ में) 'for any lawful purpose' (किसी वैध कार्य के लिये) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। उपखण्ड (4) में इसी बात को अधिक विस्तृत रूप में रखा गया है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैंने इस आपत्ति पर सावधानी से विचार किया है और मैं यह बताने जा रहा था कि इस दृष्टिकोण से क्या कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। इसी कारण मैं संशोधन उपस्थित करने के लिये यहां आया हूं।

***उपाध्यक्ष:** आप आगे बढ़िये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, इस संशोधन द्वारा मैं केवल यह व्यक्त करना चाहता हूं कि लोगों का भाषण-स्वातंत्र्य, पार्षद् अथवा संघ बनाने का स्वातंत्र्य, भारत के राज्य में अबाध पर्यटन और किसी भी स्थान में निवास करने का स्वातंत्र्य इस प्रतिबन्ध के अधीन होना चाहिये कि वह कानूनी उद्देश्य से हो।

जहां तक श्री सन्तानम् के प्रश्न का सम्बन्ध है, उनका इस सिद्धान्त से कोई मतभेद नहीं है। उनका तर्क यह है कि इन प्रतिबन्धों का खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) में पर्याप्त उल्लेख है। मैं इस सभा का और विशेषत: श्री सन्तानम् का ध्यान अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। उसमें शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार दिया गया है। 'शान्तिपूर्वक और निरायुध' शब्द श्री सन्तानम् की दृष्टि से आपत्तिजनक हो सकते हैं क्योंकि यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि ये शब्द अनावश्यक हैं और खण्ड (3) में यह प्रतिबन्ध पर्याप्त रूप से प्रावहित है। मेरा यह निवेदन है कि मेरे नाम से जो संशोधन हैं उनके द्वारा अन्य खण्डों में भी मसौदा बनाने के इसी सिद्धान्त का अनुसरण करने की चेष्टा की गई है। मेरा यह निवेदन है कि यदि ये शब्द उपखण्ड (ख) में हैं तो इनको उपखण्ड (क), (ग), (घ), (ङ) और (च) में भी स्थान दिया जाना चाहिये। यदि हम 'किसी वैध कार्य के लिये' शब्दों को प्रविष्ट कर देते हैं तो उनके सम्बन्ध में कोई भी विधान-मण्डल हस्तक्षेप न कर सकेगा। परन्तु यदि हम (2), (3), (4), (5) और (6) की वर्तमान शब्दावली से सन्तोष कर लेते हैं तो उनके सम्बन्ध में विधान-मण्डल हस्तक्षेप कर सकते हैं। इसलिये अन्तर यह है कि यदि मेरे सुझाव के अनुसार इन शब्दों को उपखण्डों में प्रविष्ट कर लिया गया तो वे मूलाधिकारों के अंग हो जायेंगे। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति बोलेगा तो वह किसी वैध कार्य के लिये बोलेगा। यदि वह पार्षद् अथवा संघ बनाता है तो उसे वैध ढंग से उन्हें बनाना चाहिये अर्थात् उसे ऐसे निषिद्ध कार्य जैसे षड्यंत्र आदि को न रचना चाहिये और न उनमें भाग लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि वह भारत के राज्य-क्षेत्र में पर्यटन करना चाहता है तो मेरे विचार से इस पर भी यह प्रतिबन्ध होना चाहिये कि यह वैध उद्देश्य से किया जाये। किसी पुरुष को रेलगाड़ी में किसी जनाने दर्जे में न जाना

चाहिये और न उसे किसी महिला के श्रृंगार के कमरे में जाना चाहिये। कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि मैं इस सभा-भवन के अन्दर रहता हूं। इन बातों को रोकने के लिये प्रतिबन्ध होने चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि जैसे आपने उपखण्ड (ख) में स्पष्टतया इन शब्दों का प्रवेश किया है, उसी प्रकार यदि आप उपखण्ड (क), (ग), (घ), (ङ), (च) और (छ) में भी इन्हें प्रविष्ट करें तो ये मूलाधिकारों के अंग हो जायेंगे और खण्ड (2), (3), (4), (5), और (6) से विधान-मण्डलों को उन्हें निराकृत करने की कोई शक्ति प्राप्त न होगी। इसी कारण को ध्यान में रख कर मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। श्रीमान्, इस विषय पर सावधानी से विचार होना चाहिये।

(संशोधन संख्या 431 और संख्या 433 से 437 तक उपस्थित नहीं किये गये।)

उपाध्यक्षः संशोधन संख्या 438 और 443 का पहला भाग। श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

मैं इस संशोधन को उस रूप में उपस्थित कर रहा हूं जैसा कि मैंने इसे सूची संख्या 2 के अपने संशोधन संख्या 79 द्वारा संशोधित किया था और जो इस प्रकार है:

संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 438 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(h) to keep and bear arms' [(ज) आयुधों को रखने और धारण करने का]"

और खण्ड (6) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

"'(7) Nothing in sub-clausech) of the said clause shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law, imposing, in the interest of public order

[श्री एच.वी. कामत]

peace and tranquillity, restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause.'

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ज) से किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा अथवा राज्य के लिये भी कोई ऐसा कानून बनाने में कोई बाधा न होगी जिससे उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार पर लोक-व्यवस्था, शांति अथवा अक्षोभ के हित में आयंत्रण लगें।]'"

श्रीमान्, आज इस सभा में इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मैं कुछ गर्व का अनुभव कर रहा हूं जो, मुझे आशा है, क्षम्य होगा। इस पर विचार करते हुये कि इससे पिछले सौ वर्षों का कलुषित काल समाप्त हो जायेगा और इस संशोधन के विषय के महत्त्व को भी समझते हुये, श्रीमान्, क्या मैं आपसे यह अपील कर सकता हूं कि मुझे समय के सम्बन्ध में कुछ छूट दे दी जाये क्योंकि मैं इस समस्या को पूर्ण रूप से इस सभा के सम्मुख उपस्थित करना चाहता हूं? क्या मैं डॉ. अम्बेडकर से अथवा जो कोई मसौदा-समिति की ओर से उत्तर दें उनसे यह प्रार्थना कर सकता हूं कि वे जो कुछ इस सभा में कहा जाये उसे ध्यानपूर्वक सुनें? कल हमने यह अनुभव किया कि दिन के समाप्त होते समय डॉ. अम्बेडकर थके होने के कारण, मेरे विचार से, शीर्षक सम्बन्धी वादानुवाद की ओर ध्यान न दे सके।

***उपाध्यक्ष:** कल जो कुछ हुआ उसकी ओर संकेत करने की मैं आपको आज्ञा नहीं देता।

***श्री एच. वी. कामत :** संशोधन के सम्बन्ध में बोलने के पहले क्या मैं यह बता सकता हूं कि अनुच्छेद 13 में एक महत्वपूर्ण बात छोड़ दी गई है? मूलाधिकार सम्बन्धी उप-समिति ने, जिसके सभापति सरदार पटेल थे, जो प्रतिवेदन उपस्थित किया था उसमें उल्लिखित 13 से 18 तक के अधिकारों का शीर्षक रखा गया है 'स्वतंत्रता के अधिकार'। जो मसौदा इस समय इस सभा के सम्मुख उपस्थित है उसमें से यह उप-शीर्षक निकाल दिया गया है। दिसम्बर सन् 1946 ई. से जुलाई 1947 ई. तक जिस समिति की बैठक हुई उसकी पहली माला के प्रतिवेदन में, जिससे मैं पढ़ रहा हूं, अनुच्छेद 13 के पहले ही 'स्वतंत्रता के अधिकार' उप-शीर्षक है।

अब मैं, श्रीमान्, संशोधन को उठाता हूं। हम में से जो लोग पिछले तीस वर्ष अथवा उससे अधिक समय से भारत में काम करते आये हैं उन सभी का यह अनुभव है कि सभी लोगों की, उनके सभी वर्गों की यह मांग रही है। पहले तो

यह पिछली शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने जो अपमानजनक शस्त्र-सम्बन्धी कानून बनाया था उसके विरोध के रूप में की गई थी और इसके अतिरिक्त स्वरक्षा के अधिकार की प्रत्याभूति प्राप्त करने के लिये की गई थी। पिछली दो दशाब्दियों में कांग्रेस के विभिन्न प्रस्तावों द्वारा यह मांग की गई थी। सबसे महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक प्रस्ताव वह था जो मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कराची में स्वीकार किया गया था। श्रीमान्, मैं उस प्रस्ताव से कुछ प्रासंगिक उद्धरणों को सभा के सम्मुख रखता हूं:

> "इस कांग्रेस की यह धारणा है कि लोगों को कांग्रेस की स्वराज की कल्पना से परिचित कराने के लिये यह आवश्यक है कि कांग्रेस की स्थिति ऐसे ढंग से बताई जाये जो उनकी समझ में आ सके। जनसाधारण का शोषण समाप्त करने के लिये राजनैतिक स्वतंत्रता में करोड़ों भूख से पीड़ित लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता भी सम्मिलित होनी चाहिये। इसलिये कांग्रेस यह घोषित करती है कि किसी भी विधान में, (कृपया 'किसी भी विधान में' शब्दों की ओर ध्यान दीजिये) जिसके सम्बन्ध में उसकी ओर से सहमति प्रदान की जाये, यह प्रावहित होना चाहिये अथवा स्वराज सरकार को यह प्रावहित करने की शक्ति दी जानी चाहिये कि..."

इसके बाद विभिन्न मूलाधिकारों की गणना की गई है जिनमें एक मूलाधिकार यह है:

> "प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार होगा कि वह तत्सम्बन्धी आनियमों और आरक्षणों के अधीन आयुध रखे और उन्हें धारण करे।"

श्रीमान्, मूलाधिकारों की इस सूची में, जिसे कांग्रेस के कराची अधिवेशन में स्वीकार कर लिया गया था मैं यह देखता हूं कि उसमें दिये हुये मूलाधिकारों में से इस अधिकार के अतिरिक्त इस विधान के मसौदे में अन्य सभी मूलाधिकार समाविष्ट कर लिये गये हैं।

इस संशोधन के सम्बन्ध में मैं यह भी कहना चाहता हूं कि इसे उपस्थित करने में मैं अकेला नहीं हूं क्योंकि कांग्रेस के मंत्रियों—श्री शंकरराव देव और आचार्य जुगलकिशोर—ने भी संशोधन संख्या 443 उपस्थित किया है जिसका आशय मेरे संशोधन के समान ही है।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप यह सुझा रहे हैं कि यह काम केवल कांग्रेस का ही है? मेरा तो यह विचार था कि यह काम सभी दलों के सहयोग का फल है।

***श्री एच.वी. कामतः** परन्तु, श्रीमान्, इससे सभी सहमत होंगे कि इस सभा में कांग्रेस दल का ही बहुमत है और यदि वह दल अपनी पुरानी घोषणाओं का समर्थन नहीं करने जा रहा है, यदि वह अपने पुराने दृष्टिकोण को छोड़ना चाहता है और अपने पुराने प्रस्ताव को कार्यान्वित करने नहीं जा रहा है तो उस दल की क्या दशा हो गई है? यदि कराची में स्वीकृत इस प्रस्ताव की आधारभूत बात ही को त्याग दिया गया तो मैं इस सभा से पूछता हूं कि क्या हम लोगों की सम्मति में गिर नहीं जायेंगे? श्रीमान्, यह मांग केवल मांग ही के रूप में नहीं रही है। मुझे स्मरण है कि सन् 1923 अथवा 1924 ई. में नागपुर में आयुध-सम्बन्धी कानून के विरोध में एक आन्दोलन हुआ था और उसमें सारे भारत के सत्याग्रहियों ने भाग लिया था। वह छः महीने तक चलता रहा और आयुध-सम्बन्धी कानून के विरोध में इस आन्दोलन का कांग्रेस ने समर्थन किया। आज हम यह कह सकते हैं कि परिस्थिति बदल गई है और अब हम अपने मूलाधिकारों में इस प्रकार की किसी बात को समाविष्ट नहीं करना चाहते। श्रीमान्, इस तर्क के सम्बन्ध में मैं कुछ समय बाद बोलूंगा।

मैं इस तर्क के बल को समझता हूं कि इस परमाधिकार को वर्तमान समय में नहीं देना चाहिये। सम्भवतः पदारूढ़ लोगों को यह भय है कि इस अधिकार का दुरुपयोग किया जायेगा। इसी कारण मैंने इस परादिक को इस अनुच्छेद के अन्य परादिकों के अनुरूप ही बनाया है। मैं स्वयं इन विस्तृत परादिकों के पक्ष में बहुत नहीं हूं। इस सम्बन्ध में भी मैं समिति की पहली माला के प्रतिवेदन के पृष्ठ 21 और 29 की ओर माननीय डॉ. अम्बेडकर का ध्यान आकर्षित करता हूं। पृष्ठ 21 में मूलाधिकार-सम्बन्धी उस उप-समिति का प्रतिवेदन है जिसके सभापति माननीय सरदार पटेल थे। बाद को इसी प्रतिवेदन पर इस सभा में विचार-विमर्श हुआ और उसमें परिवर्तन किये गये और मूलाधिकार-सम्बन्धी समिति के मौलिक प्रतिवेदन में जो विस्तृत परादिक थे, उनको उस प्रतिवेदन-सम्बन्धी प्रस्ताव में स्थान नहीं दिया गया जिसे विधान-परिषद् ने स्वीकार किया था। सम्भवतः डॉ. अम्बेडकर के लिये इसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता है।

संशोधन के विषय पर आते हुये, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मैं इस अधिकार को परमाधिकार का रूप नहीं देना चाहता। इसीलिये मैंने इस परादिक को स्थान दिया है जिसके अनुसार लोक-व्यवस्था, शांति और अक्षोभ के हित में आयंत्रण रखे गये हैं। यह कहा जा सकता है कि देश में कई विध्वंसकारी अथवा इसी प्रकार के लोग हैं और वे इस अधिकार का दुरुपयोग कर सकते हैं और

साधारण नागरिक को इस प्रकार जो अधिकार प्रदान किया गया है उससे लाभ उठा सकते हैं। परन्तु क्या मैं इस सभा से यह कह सकता हूं कि विध्वंसकारी तथा अन्य दुष्ट और दुराचारी तथा अपराधी आयुधों को प्राप्त करते रहे हैं और करते रहेंगे चाहे आयुध-सम्बन्धी कोई कानून हो या ने हो। वास्तव में कानून के मार्ग पर चलने वाले लोगों को ही इस व्यवस्था से हमेशा हानि हुई है और इन दुष्टों से उन्हीं की रक्षा करने की आवश्यकता है। पिछले बारह महीनों के इतिहास ने इसे अकाट्य रूप से प्रमाणित कर दिया हैं कि इन अपराधपूर्ण बलवों और दंगों में हिंसक लोगों अथवा विध्वंसकारी लोगों को हानि नहीं होती बल्कि हानि होती है कानून के मार्ग पर चलने वाले लोगों को। वास्तव में इन्हीं की रक्षा आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि हमें केवल ऐसे अधिकारों को ही स्थान देना चाहिये जिनके सम्बन्ध में यह भय हो कि नागरिक इनसे वंचित किये जा सकते हैं। किन्तु यदि हम इस तर्क की ध्यानपूर्वक परीक्षा करें और इस तर्क के प्रकाश में इस अनुच्छेद की भी परीक्षा करें तो हम यह देखेंगे कि ऐसे अधिकार भी जैसे भारत के राज्यक्षेत्र में अबाध पर्यटन का अधिकार, भारत के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार और ऐसे ही अन्य अधिकार जिनके बारे में इस प्रकार का न तो कोई भय है और न सन्देह है कि वे नहीं दिये जायेंगे, इस अनुच्छेद में सम्मिलित किए गये हैं। परन्तु केवल इस अधिकार को अर्थात् आयुध रखने और धारण करने के अधिकार को इस अनुच्छेद में स्थान नहीं दिया गया है। यदि मेरा यह विवादशून्य प्रस्ताव भी अर्थात् आयुध धारण करने की साधारण स्वतंत्रता भी इस सभा को स्वीकार्य न हो तो मेरे विचार से हमारे देशवासियों पर बहुत ही खराब प्रभाव पड़ेगा और वे यह सोचेंगे कि सरकार लोगों का विश्वास नहीं करती है, वे उसके विश्वासपात्र नहीं हैं और वह उनसे डरती है। श्रीमान्, सरकार के मन्त्रियों के लिये यह कहना उचित ही है कि उनको लोगों की रक्षा करनी है। अपने बंगलों के बाहर सन्तरियों को तैनात करके वे यह तर्क तो उपस्थित कर ही सकते हैं। परन्तु किसी साधारण नागरिक की रक्षा के लिये कोई सशस्त्र सन्तरी नहीं रहते और उसके मकान के बाहर भी कोई सन्तरी पहरा नहीं लगाते। यदि सरकार लोगों को यह समझाना चाहती है कि वह उनका विश्वास नहीं करती और उसको उनसे भय है—यदि यही सरकार का दृष्टिकोण है तो वह ऐसा कहे। इससे यह प्रमाणित हो जायेगा कि यह सरकार लोकप्रिय सरकार नहीं है और इसका लोगों पर विश्वास नहीं है।

[श्री एच.वी. कामत]

यदि आपकी सरकार लोकप्रिय सरकार है तो पिछले सौ वर्षों के कलंक को मिटाने के लिये कम से कम इतना तो आप कर ही सकते हैं।

यह तर्क भी उपस्थित किया जा सकता है कि कांग्रेस ने, महात्मा गांधी ने और हमारे नेताओं ने हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से अपनी रक्षा करना सिखाया है। परन्तु, श्रीमान्, क्या मैं नम्रतापूर्वक इस सभा को यह स्मरण करा सकता हूं कि महात्मा गांधी यह कहते थे कि "यदि सम्भव हो तो अहिंसापूर्वक विरोध कीजिये और रक्षा कीजिये, परन्तु यदि आवश्यक हो तो हिंसापूर्वक भी कीजिये। मुझे घृणा है कायरता से"। श्रीमान्, हाल में सरदार पटेल ने स्वयं इस सिद्धान्त का प्रचार किया है। उन्होंने देश में भ्रमण करके लोगों से कहा—"भागो मत, कायर मत बनो, यदि आवश्यक हो तो हिंसापूर्वक भी विरोध करो"। हत्यारे, गुण्डे और अपराधी के सामने भागो मत। सभी साधनों से अपनी रक्षा करो। मैं देख रहा हूं कि मेरे माननीय मित्र भी शंकरराव देव हंस रहे हैं। वे मुस्करा सकते हैं और हंस सकते हैं परन्तु मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि जो अन्त में हंसता है उसी की हंसी सबसे अच्छी होती है। उन्होंने एक संशोधन उपस्थित किया है परन्तु मैं कह नहीं सकता कि उनको उसकी चिन्ता है अथवा नहीं। अन्त में मैं केवल यह कहूंगा कि यदि हम कांग्रेस दल के लोग, जिनका इस सभा में बहुमत है, अपने पुराने वचनों को पूरा करना चाहते हैं, यदि हमारी इच्छा यह है कि हम अपने पूर्व स्वीकृत प्रस्तावों को कार्यान्वित करें, यदि हम अपने आपको धोखा नहीं देना चाहते हैं, तो मैं इस सभा से अपील करता हूं कि वह इस संशोधन को स्वीकार कर ले और इस प्रकार पिछले सौ वर्षों के कलंकपूर्ण काल के अपमानजनक अध्याय का अन्त कर दे।

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या संशोधन संख्या 443 का प्रथम भाग उपस्थित किया जाने वाला है?

***श्री शंकरराव देव** (बम्बई : जनरल): जी नहीं, श्रीमान्।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): श्रीमान्, मेरे माननीय मित्र ने अभी जो संशोधन उपस्थित किया है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं।...

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि सामान्य विचार-विमर्श अभी आरम्भ करने के बजाय हम उसे उस समय तक के लिये स्थगित कर दें

जब तक कि सभी संशोधन उपस्थित न हो जायें? हम मौलाना साहब को बोलने का अवसर देने के लिये यथासम्भव प्रयास करेंगे। क्या वे अपनी जगह पर बैठ जायेंगे। (*हंसी*)

शांति, शांति। यदि मौलाना साहब बोलना चाहें तो उन्हें इसका अधिकार है। मौलाना साहब, मुझे इसका खेद है कि मैंने आपसे अपनी जगह पर वापस चले जाने को कहा। इस सभा के एक पुराने सदस्य को इस प्रकार सम्बोधन करना खेदजनक है।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान् मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (छ) के बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ा जाये:

'(h) to follow the personal law of the group or community to which he belongs or professes to belong.

(i) to personal liberty and to be tried by a competent court of law in case such liberty is curtailed.'

[(ज) उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने का जिसका कि वह सदस्य हो अथवा जिसका सदस्य होने की उसने घोषणा की हो।

(झ) वैयक्तिक स्वतंत्रता का और इस स्वतंत्रता के सीमित होने पर किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा न्याय किये जाने का।]"

***श्री सी. सुब्रह्मण्यम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। यह सभा निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में इस आशय के एक अनुच्छेद को स्वीकार कर चुकी है कि एकविध व्यवहार-संहिता होनी चाहिये। अब माननीय सदस्य महोदय यह प्रस्तुत करना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को उस समुदाय अथवा सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने का स्वातंत्र्य होना चाहिये जिसका कि वह सदस्य हो अथवा जिसका सदस्य होने की उसने घोषणा की हो। यह उस अनुच्छेद के विरोध में है जो स्वीकार हो चुका है। हम यह निर्णय कर चुके हैं कि जहां तक सम्भव हो वैयक्तिक कानून एकविध व्यवहार-संहिता के अधीन होना चाहिये और यह संशोधन उस अनुच्छेद के सिद्धांत के विरुद्ध है।

[श्री सी. सुब्रह्मण्यम्]

जहां तक संशोधन के दूसरे भाग का सम्बन्ध है उस पर उस समय विचार-विमर्श होना चाहिये जब हम अनुच्छेद 15 को उठायें।

***उपाध्यक्षः** यह कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। मि. मोहम्मद इस्माइल अपना भाषण जारी रख सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** वास्तव में जब निदेशक सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श हो रहा था तो मैंने इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा था। मैंने यह स्पष्ट कर दिया था कि वैयक्तिक कानून का यह प्रश्न मूलाधिकारों के अध्याय के अधीन रखा जाना चाहिये और मैंने यह भी कहा था कि मैं इस संशोधन को उचित अवसर पर उपस्थित करुंगा।

वैयक्तिक कानून लोगों के उस समुदाय अथवा वर्ग के धर्म का अंग है जो उस कानून का अनुसरण करता है। यदि कोई बात वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप करती है तो वह समुदाय और जनसाधारण, जो अपनी साधारण बुद्धि से इस प्रश्न पर विचार करेंगे, इसे धर्म में हस्तक्षेप समझेंगे। पहले एक अवसर पर इस विषय पर बोलते हुये श्री मुन्शी ने कहा था कि इस प्रश्न का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने यह भी कहा था कि आखिर इसका धर्म से क्या सम्बन्ध। एक प्रतिष्ठित वकील होने के नाते उन्हें यह जानना चाहिये कि वैयक्तिक कानून का यह प्रश्न केवल धर्म पर ही आधृत है यदि वह धार्मिक नहीं है तो वह कुछ भी नहीं है यदि वे यह कहते हैं कि किसी धर्म में ऐसी बातें न होनी चाहिये तो यह दूसरी बात है। यह प्रश्न तो उन विपरीत विचारधाराओं का है जिनका सम्बन्ध इससे है कि धर्म में क्या होना चाहिये और क्या न होना चाहिये। लोगों में मतैक्य नहीं होता है और इस सम्बन्ध में विभिन्न विचार रखने वाले लोगों को एक-दूसरे के दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता दिखानी चाहिये। कुछ धर्म ऐसे हैं जिनमें वैयक्तिक कानून का कोई स्थान नहीं है परन्तु हिन्दू धर्म और इस्लाम के समान कुछ ऐसे धर्म हैं जिनमें वैयक्तिक कानून का स्थान है। इसलिये मेरा यह कहना है कि लोगों को अपने वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

डॉ. अम्बेडकर ने इस सभा में यह भी कहा था कि वैयक्तिक कानून के अनुसरण का प्रश्न ऐसा नहीं है जिसमें परिवर्तन न हो, जो स्थायी हो। वास्तव में मुसलमानों में भी कुछ वर्ग ऐसे हैं जो इस्लाम के वैयक्तिक कानून का अनुसरण

नहीं करते हैं, परन्तु यह प्रश्न दूसरा ही है। यह कहना उचित नहीं है कि चूंकि एक वर्ग किसी धर्म के किसी कानून का अथवा उस धर्म के किसी अंग का अनुसरण नहीं करना चाहता, इसलिये अन्य लोगों को भी उसका अनुसरण न करना चाहिये और उनको धर्म के उस अंग को न मानने के लिये बाध्य न किया जाना चाहिये जिसे उसी सम्प्रदाय के कुछ वर्ग न मानते हों।

श्रीमान्, यह उचित नहीं है, वास्तव में उन लोगों के लिये जो अपने धर्म का और अपने इस कानून का अनुसरण करते हैं। यह कनून स्थायी है क्योंकि, जैसा कि समझा जाता है, लोगों को अपनी इच्छानुसार धर्म में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने धर्म का खण्डन करते हैं परन्तु उन लोगों की बात अलग है। हम अन्य लोगों को अपने धर्म का खण्डन करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते। वैयक्तिक कानून का सम्बन्ध उन्हीं लोगों से है जो उसका अनुसरण करते हैं। इससे सारे सम्प्रदाय के लिये अथवा जनसाधारण के लिये कोई बन्धन नहीं होता। इस सभा को स्मरण होगा कि एक अन्य प्रश्न के सम्बन्ध में जो वास्तव में धार्मिक प्रश्न है—मेरा अर्थ गो-वध से है—उस सम्प्रदाय के अतिरिक्त जो गो-वध निषेध को एक धार्मिक प्रश्न समझता है, अन्य सम्प्रदायों पर भी एक प्रकार का दायित्व रखा गया है। श्रीमान्, अपने मित्रों के विचारों और भावनाओं का आदर करते हुये अल्पसंख्यकों ने, जिनको गो-वध करने और गो-मांस भक्षण करने का अधिकार है, सभा के सम्मुख जो प्रस्ताव था उसे स्वीकार कर लिया यद्यपि यह प्रश्न ऐसा था जिसका केवल एक विशेष सम्प्रदाय पर प्रभाव न पड़ता था। परन्तु श्रीमान्, वैयक्तिक कानून को मानने का प्रश्न केवल उन विशेष सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखता है जो उसका अनुसरण करते हैं। किसी दूसरे सम्प्रदाय को बाध्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): क्या माननीय सदस्य महोदय को ज्ञात है कि पाकिस्तान में गो-वध पर आयंत्रण लगाये गये हैं?

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय सदस्य महोदय अध्यक्ष पद को सम्बोधन करेंगे?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** मैं उन्हें ठीक-ठीक नहीं सुन पाया। मैं नहीं जानता कि मेरे मित्र क्या कहने की चेष्टा कर रहे हैं?

***उपाध्यक्ष:** आप उनकी ओर ध्यान न दीजिये। क्या माननीय सदस्य महोदय अपना भाषण जारी करेंगे?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं माननीय सज्जन से यह पूछ रहा था कि क्या उन्हें यह ज्ञात है कि पाकिस्तान, अफगानिस्तान और कई मुस्लिम देशों में गो-वध पर आयंत्रण है। भारत में भी मुसलमान बादशाहों ने ऐसे आयंत्रण रखे थे।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** उन्होंने इस प्रकार की व्यवस्था की हो या न की हो, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस प्रश्न का सम्बन्ध एक विशेष सम्प्रदाय से है परन्तु चूंकि वह सम्प्रदाय इस वध को बन्द कराना चाहता था, अन्य सम्प्रदाय जिसे इसे रोकने की आवश्यकता न थी इसके लिये राजी हो गया। वैयक्तिक कानून से एक ऐसे विशेष सम्प्रदाय का सम्बन्ध है जो विशेष प्रकार के वैयक्तिक कानूनों का अनुसरण करता रहा है और इस सम्बन्ध में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि अन्य लोगों को उस कानून का अनुसरण करने के लिये बाध्य किया जाये। यह प्रश्न तो अल्पसंख्यकों के अथवा बहुसंख्यकों के अपने वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता का है। वास्तव में मैं जानता हूं कि असंख्य हिन्दू ऐसे हैं जो वैयक्तिक कानून में हस्तक्षेप को धर्म में हस्तक्षेप समझते हैं। श्रीमान्, मुझे ज्ञात है कि उन्होंने अधिकारियों के पास अथवा उन लोगों के पास जिनका इस विषय से सम्बन्ध है, एक बहुत बड़ा प्रार्थना-पत्र भेजा है। इसलिये केवल मुसलमानों का ही नहीं बल्कि हिन्दुओं का भी यह विचार है कि यह एक धार्मिक प्रश्न है और इसमें हस्तक्षेप न होना चाहिये। किसी सम्प्रदाय के वैयक्तिक कानून से अन्य सम्प्रदायों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह अनुरोध है कि प्रत्येक सम्प्रदाय को वैयक्तिक कानून का अनुसरण करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिये। इससे अन्य सम्प्रदायों के अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न होगा।

इसके अतिरिक्त श्री मुन्शी ने यह भी कहा कि मिश्र अथवा तुर्की जैसे मुस्लिम देशों में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है। श्रीमान्, मैं उन्हें यह स्मरण कराना चाहता हूं कि तुर्की पर एक सन्धि का दायित्व हैं उस सन्धि के अधीन यह प्रत्याभूति दी गई है कि गैर-मुसलमान अल्पसंख्यक अपने पारिवारिक कानून और वैयक्तिक स्थान का नियमन अपनी प्रथाओं के अनुसार करा सकते हैं। तुर्की पर इसका दायित्व है और इस समय उस देश में इसे निभाया जा रहा है।

जहां तक मिश्र का सम्बन्ध है, उस देश में कभी भी वैयक्तिक कानून का कोई प्रश्न नहीं उठा। परन्तु इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उस देश

में अल्पसंख्यकों ने जो कुछ चाहा वह उन्हें दिया गया। वास्तव में जो कुछ उन्होंने मांगा उससे अधिक उनको दिया गया। यदि वे वैयक्तिक कानून के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार चाहते तो वे भी उनको दिये जाते।

इनके अतिरिक्त अन्य देश भी हैं। यूगोस्लाविया में मुसलमानों को अपने पारिवारिक और वैयक्तिक कानूनों का अनुसरण करने का अधिकार दिया गया है।

इसलिये मैंने जो मांग की है वह मेरी अपनी कोई विशेष मांग नहीं है अथवा इस देश के अल्पसंख्यक सम्प्रदाय की कोई विशेष मांग नहीं है। श्रीमान्, इसे संसार के अन्य भागों में भी अच्छी प्रकार समझ लिया गया है।

श्रीमान्, मैं यह भी उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) के बाद निम्नलिखित नये खण्ड जोड़ दिये जायें:

'(7) Nothing in the clauses (2) to (6) of this article shall affect the right guaranteed under sub-clause (h) of clause (1) of this article.'

[(7) इस अनुच्छेद के खण्ड (2) से (6) तक की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।]' "

यह एक समनुवर्त्ती खण्ड है। यह समझा गया है कि पूर्वोक्त संशोधन से अर्थात् अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ज) से वैयक्तिक कानून की प्रत्याभूति दी जा चुकी है। यह नया खण्ड (7) इसलिये रखा गया है कि (2) से (6) तक के खण्डों से वैयक्तिक कानून के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप न हो सके।

अब मैं नये खण्ड (1) पर आता हूं। वह इस प्रकार है:

" 'to personal liberty and to be tried by a competent court of law in case such liberty is curtailed."

[(झ) वैयक्तिक स्वतंत्रता का और इस स्वतंत्रता के सीमित होने पर किसी अधिकृत न्यायालय द्वारा न्याय किये जाने का]

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

इसका अल्पसंख्यकों अथवा बहुसंख्यकों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध प्रत्येक नागरिक के अधिकार से है। वैयक्तिक स्वातंत्र्य वास्तव में स्वातंत्र्य का प्राण है। इसी आधार पर देश के स्वातंत्र्य की भीति खड़ी की जानी चाहिये। परन्तु श्रीमान्, इस वृहत् विधान में इस वैयक्तिक स्वातंत्र्य के प्रश्न को अकेला छोड़ दिया गया है। केवल अनुच्छेद 15 में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का एक जगह उल्लेख किया गया है और उसे 'विधि द्वारा नियत कार्य-प्रणाली' पर निर्भर कर दिया गया है। मैं यहां इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि ये शब्द 'न्यायोचित विधि सम्मत कार्यप्रणाली' होने चाहियें अथवा 'विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली' परन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का विधान में केवल उल्लेखमात्र किया गया है। परन्तु वैयक्तिक स्वातंत्र्य मूलाधिकारों का आधारभूत अधिकार है और इसका उल्लेख विधान में जिस साधारण ढंग से किया गया है उस प्रकार न होना चाहिये था।

मैं आपकी अनुमति से यह दिखाने के लिये एक उद्धरण पढ़ूंगा कि अन्य देशों के विधानों में वैयक्तिक स्वतंत्रता के इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न को कैसा स्थान दिया गया है।

भारत से बहुत छोटे देशों ने भी इस प्रश्न पर अधिक गम्भीरता से और यदि मुझे यह कहने की आज्ञा हो तो मैं कहूंगा कि अधिक पवित्रता से विचार किया है। पोलैण्ड के विधान में अन्य बातों के साथ यह भी कहा गया है कि 'यदि किसी मामले में न्यायालय की आज्ञा तुरन्त ही नहीं उपस्थित की जा सकती (क्योंकि न्यायालय की आज्ञा से ही किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता संकुचित की जा सकती है) तो वह गिरफ्तारी के 48 घण्टे के अन्दर दी जानी चाहिये और उसमें गिरफ्तारी के कारणों का उल्लेख होना चाहिये। जो लोग गिरफ्तार हो गये हों और जिनको 48 घण्टे के अन्दर न्यायालय के अधिकारियों के हस्ताक्षरों के साथ लिख कर गिरफ्तारी के कारण न बताये गये हों वे तुरन्त ही मुक्त कर दिये जायेंगे।'

'अपनी आज्ञा को व्यवहार में लाने के लिये जोर देने के लिये शासनाधिकारी जिन साधनों को काम में ला सकते हैं उनका कानूनों में उल्लेख है।'

इसके अतिरिक्त उस विधान में यह भी कहा गया है कि 'कोई कानून किसी ऐसे नागरिक को जो अन्याय अथवा अनाचार का शिकार हुआ हो, न्याय कराने के वैधानिक साधनों से वंचित नहीं कर सकता है।'

श्रीमान्, एक दूसरा देश अर्थात् यूगोस्लाविया इस सम्बन्ध में और भी आगे बढ़ गया है। उसने यह प्रावधान रखा है कि:

"किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी अथवा हिरासत के कारणों की सूचना मिल जाने पर उसे अधिकार है..."

***श्री सी. सुबह्मण्यम्:** वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्न केवल अनुच्छेद 15 ही के अधीन आते हैं। इस अनुच्छेद के अधीन वे अप्रासंगिक हैं। अनुच्छेद 15 में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का इस प्रकार उल्लेख है : "भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा वैयक्तिक स्वातंत्र्य से विधि द्वारा नियत कार्यप्रणाली को छोड़कर अन्य प्रकार वंचित न किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता से अथवा विधियों के समरक्षण से वंचित रखा जायगा।" इसलिये वैयक्तिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर अनुच्छेद 13 के अधीन विचार-विमर्श करने से क्या लाभ होगा?

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** मैं इस विषय पर बोल चुका हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका उस अनुच्छेद में उल्लेख है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि चूंकि इसका उल्लेख वहां है इसलिये उसी अनुच्छेद के प्रसंग में इसकी चर्चा होनी चाहिये। मेरी यह धारणा है कि अनुच्छेद 13 के अधीन, जिसमें नागरिकों की विभिन्न स्वतंत्रताओं का उल्लेख है, इसको स्थान देना अधिक उपयुक्त होगा। इन स्वतंत्रताओं में यह सब से अधिक महत्वपूर्ण स्वतंत्रता है। इसलिये मेरे यह कहने में कोई हानि नहीं है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का अनुच्छेद 13 के अधीन उल्लेख होना चाहिये। इसी दृष्टि से मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है और मैं उस संशोधन पर बोल रहा हूं।

श्रीमान्, आपकी आज्ञा से मैंने जो संशोधन उपस्थित किया है उसमें कहा गया है कि नागरिक को अपने वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये। मैं कह रहा था कि यूगोस्लाविया के विधान में यह प्रावहित है कि: "कोई व्यक्ति किसी अपराध अथवा अनाचार के लिये तब तक गिरफ्तार न किया जायेगा जब तक कि कोई अधिकृत अधिकारी ऐसी लिखित आज्ञा न दे जिसमें उस पर लगाये हुये अभियोग का उल्लेख हो। इस आज्ञा को उस व्यक्ति की गिरफ्तारी के समय अथवा गिरफ्तारी के 24 घण्टे के अन्दर दिया जाना चाहिये। गिरफ्तारी की आज्ञा के विरुद्ध किसी अधिकृत न्यायालय में तीन दिन के अन्दर अपील की जा सकती है। यदि इस समय के अन्दर कोई अपील न की गई हो—यह एक महत्वपूर्ण बात है—तो पुलिस के अधिकारियों को उसके बाद 24 घण्टे के अन्दर

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

इस आज्ञा की सूचना अधिकृत न्यायालय को अवश्य ही देनी चाहिये। इस आज्ञा की सूचना मिलने पर न्यायालय दो दिन के अन्दर इस गिरफ्तारी की आज्ञा का या तो समर्थन करेगा या उसे रद्द कर देगा और उसका निर्णय तुरन्त ही कार्यान्वित किया जायेगा। जो सरकारी कर्मचारी इस प्रावधान का खण्डन करेंगे वे स्वतंत्रता का गैरकानूनी तौर से अपहरण करने के लिये दण्डित किये जायेंगे।"

श्रीमान्, हमारा विधान एक वृहत् विधान है। हमारे मित्रों ने संसार में सबसे वृहत् विधान बनाने के लिये एक दूसरे को बधाइयां दी हैं। जिस विधान से मैंने अभी आपके सम्मुख एक उद्धरण रखा था उसमें केवल 12 अनुच्छेद हैं। वह हमारे विधान से बहुत छोटा है परन्तु वैयक्तिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में उसमें इतने विस्तृत प्रावधान को स्थान दिया गया है। जहां तक वैयक्तिक स्वातंत्र्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न का सम्बन्ध है, हमारे वृहत् विधान में कुछ ही शब्दों में उसका उल्लेखमात्र कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, इस देश के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न लोक-रक्षा अधिनियम बनाये गये हैं और वे व्यवहार में हैं। इनमें जिस प्रकार का वैयक्तिक स्वातंत्र्य है वह वास्तव में वैयक्तिक स्वातंत्र्य का उपहास मात्र है। अधिशासीवर्ग की स्वेच्छा से कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार किया जा सकता है। वह कारागार में डाल दिया जाता है और वह जानता तक नहीं कि उसे क्यों कारावास में सड़ना पड़ रहा है अथवा किस अभियोग पर उसे हिरासत में रखा गया है। जहां कहीं कानून के अनुसार सरकार पर यह दायित्व भी है कि वह उसे यह बताये कि उसे किन कारणों से हिरासत में रखा गया है, अधिशासी-वर्ग इसके लिये जितना समय चाहता है लेता है। ऐसे भी उदाहरण हैं जबकि सम्बन्धित व्यक्तियों को कई सप्ताहों तक और कई महीनों तक उनके ऊपर लगाये हुये अभियोग की सूचना नहीं दी गई और जब ये अभियोग बताये गये तो उनमें से कई इस प्रकार के थे कि किसी न्यायालय के सम्मुख एक क्षण के लिये भी उनका समर्थन नहीं हो सका। किसी बन्दी को अथवा किसी गिरफ्तार किये हुये अथवा हिरासत में रखे हुए किसी व्यक्ति को इसका अधिकार नहीं दिया गया है कि वह किसी न्यायालय के सम्मुख उस आज्ञा की वैधानिकता की जांच करवाये। विदेशी राज के अधीन अर्थात् अंग्रेजों के राज के अधीन भी कानून इस प्रकार व्यवहार में नहीं लाया गया।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, एक अन्य प्रकार का तर्क उपस्थित किया जा रहा है और वह यह है कि अंग्रेजों की बात दूसरी थी, वे इस देश में विदेशी थे और अब तो अपना राज है। यह सच है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम नागरिकों की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में मनमाने ढंग से व्यवहार कर सकते हैं। नौकरशाही आखिर नौकरशाही ही है चाहे वह विदेशी राज में हो या स्वराज में हो। विदेशी राज में ही नहीं बल्कि स्वराज में भी लोग शक्ति पाकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये, श्रीमान्, जैसा कि अन्य स्वतंत्र देशों में किया गया है, अधिशासी वर्ग की स्वेच्छाचारिता से नागरिकों की बड़ी सावधानी से रक्षा की जानी चाहिये। संसार के लगभग प्रत्येक देश में नागरिकों के वैयक्तिक स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये विस्तृत प्रावधान रखे गये हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि केवल भारत में ही ऐसा क्यों न हो। इसलिये मैं आशा करता हूं कि विधान के रचयिता इस प्रश्न पर फिर विचार करेंगे और वैयक्तिक स्वातंत्र्य की रक्षा के लिये यथोचित प्रावधानों को विधान में स्थान देंगे।

श्रीमान्, अपने संशोधन में मैंने वैयक्तिक स्वातंत्र्य का विस्तृत रूप से उल्लेख नहीं किया है। मैं केवल यह चाहता हूं कि यदि किसी नागरिक का वैयक्तिक स्वातंत्र्य खण्डित किया जाये तो उसे न्यायालय के सम्मुख उपस्थित होने और न्याय कराने का अधिकार होना चाहिये। मैं यह चाहता हूं कि भारत के नागरिक को यह बहुमूल्य अधिकार दिया जाना चाहिये।

श्रीमान्, क्या मैं संशोधन संख्या 502 के अन्य समनुवर्त्ती संशोधनों को भी उपस्थित कर सकता हूं। मैंने केवल संशोधनों की सूची के पृष्ठ 53 में उल्लिखित संशोधन को अर्थात् उपखण्ड (7) को उपस्थित किया है। उसका सम्बन्ध वैयक्तिक कानून से है। क्या मैं अब संशोधन के दूसरे भाग को उपस्थित कर सकता हूं, जिसका सम्बन्ध सूची के पृष्ठ 54 में दिये हुये दो नये खण्ड 8 और 9 से है?

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य यह कर सकते हैं परन्तु वे भाषण न दें।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहबः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि निम्नलिखित दो नये खण्ड जोड़ दिये जायें :

"(8) Nothing in clauses (2) to (6) shall affect the right guaranteed under sub-clause (i) of clause (1) of this article.

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

(9) No existing law shall operate after the commencement of this Constitution so far as the same affects adversely the right guaranteed under sub-clause (i) of clause (1) of this article and no law shall be passed by the Parliament or any State which may adversely affect the right guaranteed under sub-cause (i) of cause (1) of this article."

[(8) खण्ड (2) से (6) तक की किसी बात से इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूति अधिकार पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

(9) इस विधान के आरम्भ होने के पश्चात् कोई वर्तमान कानून, जहां तक उसका प्रभाव इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूति अधिकार के विरुद्ध पड़ता है, प्रयोग में न रहेगा और संसद अथवा कोई राज्य कोई ऐसा कानून न बनायेगा जिसका प्रभाव इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (1) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार के विरुद्ध पड़े।]

ये केवल समनुवर्ती संशोधन हैं।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 442, 499, 443 का दूसरा भाग, 468 और 501 को उठायेंगे। इन सबका आशय समान है। मेरा यह मत है कि नये अधिनियमों के अधीन जो दो नये संशोधन उपस्थित किये जा सकते है, वे संशोधन संख्या 442 और 499 हैं। अन्य संशोधनों पर मत लिया जायेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम आयंगर** (मद्रास : जनरल) : इन सबका संबंध प्रतिनिधियों को चुनने की इस स्वतंत्रता से है। इस प्रकार यह एक नया विषय है और इस कारण इस पर विचार-विमर्श स्थगित किया जा सकता है।

***उपाध्यक्ष :** 499वां संशोधन कैसा है?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव :** वह भी इसी विषय के सम्बन्ध में है।

***उपाध्यक्षः** इस सारे संशोधन-समूह पर विचार-विमर्श स्थगित किया जाता है।

(संशोधन संख्या 444 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष :** संशोधन संख्या 445।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'Liberty of the person is guaranteed. No person shall be deprived of his life, nor be arrested or detained in custody, or imprisoned, except according to due process of law, nor shall any person be denied equality before the law or equal protection of the laws within the territory of India."

(व्यक्ति के स्वातंत्र्य की प्रत्याभूति दी जाती है। भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी व्यक्ति को, यथोचित विधि-सम्मत कार्यप्रणाली को छोड़ कर अन्य प्रकार न तो अपने प्राण से वंचित तथा न गिरफ्तार किया जायेगा अथवा हिरासत में रखा जायेगा अथवा कारागार में रखा जायेगा और न किसी व्यक्ति को विधि के सामने समता के अथवा विधियों से समरक्षण से वंचित रखा जायेगा।)

श्रीमान्, यह संशोधन भी उन्हीं संशोधनों के समान है जिन्हें मैं इस सभा के सम्मुख रखने का प्रयास कर रहा हूं और जिनका उद्देश्य आधुनिक उदार विधानों के सिद्धान्तों की परिभाषा करना तथा उन्हें इस विधान में समाविष्ट करना है, क्योंकि यह खेद की बात है कि हमारे विधान में उन्हें जानबूझ कर स्थान नहीं दिया गया है। जब से लोग नागरिक स्वतंत्रताओं को समझने लगे हैं तब से वैयक्तिक स्वतंत्रता को भी समझने लगे हैं और मुख्यत: इसी आधार पर उनके और स्वेच्छाचारी शासकों के बीच संघर्ष होता रहा है। केवल वैयक्तिक स्वातंत्र्य की न्याय्य मांग को कुचलने के लिये ही स्वेच्छाचारी शासक अपनी पूरी शक्ति लगाता रहा है। बिना यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के ही स्वेच्छाचारिता से गिरफ्तार करने और हिरासत में रखने के विरुद्ध संघर्ष करने के व्यक्ति के स्वातंत्र्य के आधार पर ही अंग्रेजों के विधान तथा क्रान्ति द्वारा समुद्भूत फ्रांसीसी विधान की उन्नति हुई। जब कभी-स्वेच्छाचारी शासक के तर्क का दिवाला निकला है उसकी यही इच्छा रही है कि जो लोग उससे सहमत न हों, उन्हें कारागार में बन्द कर दिया जाये। इसीलिये जब कभी किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में यह शंका हुई कि वह थोड़ा भी मतभेद प्रकट करेगा अथवा थोड़ी भी असुविधा

[प्रो. के.टी. शाह]

उत्पन्न करेगा अथवा किसी प्रकार भी असमंजस में डाल देगा, तो जो लोग स्वेच्छाचारिता से अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे, उन्हें यही रास्ता दिखाई दिया कि उस व्यक्ति को, बिना उस पर अभियोग लगाये हुये ही अथवा बिना मुकद्दमा चलाये हुये ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाये अथवा हिरासत में रख दिया जाये। वास्तव में बहुत से आधुनिक विधानों में इस प्रकार का एक प्रमुख अनुच्छेद रखा गया है कि वैयक्तिक स्वतंत्रता की पवित्रता मान्य होगी और विधान द्वारा प्रत्याभूत होगी। हम एक नये मार्ग पर चल रहे हैं और हमें अपने विधान में ऐसी बातों को समाविष्ट करने से न छोड़ देना चाहिये, जिनकी पवित्रता मेरे विचार से मान्य होनी चाहिये और जिनको दुहराने से कोई हानि न होगी बल्कि हमारा नैतिक बल बढ़ेगा ही।

श्रीमान्, इस विधान का मसौदा ऐसे समय में बनाया गया, जब लोग असाधारण कार्य में व्यस्त थे। पिछले बारह-चौदह महीनों की दु:खद घटनाओं का भी मसौदाकारों पर यह प्रभाव पड़ा कि उस समय के गुण्डाराज में व्यक्ति के स्वातंत्र्य को किसी प्रकार संकुचित करना आवश्यक था। इसी कारण वैयक्तिक स्वातंत्र्य की पवित्रता का इस विधान में साधारण शब्दों में ही उल्लेख किया गया है। परन्तु अब चौदह महीनों की कालावधि के समाप्त होने पर मैं इस सभा के सम्मुख यह सुझाव रखना चाहता हूं कि इन दु:खद स्मृतियों को भुला देना चाहिये। निस्संदेह हमें दुर्भाग्य से यह अनुभव हुआ कि व्यक्ति अनेक भावनाओं से प्रेरित होकर हिंसा का मार्ग ग्रहण करने लगे और इस प्रकार अपने समाज के लोगों को हानि पहुंचाने लगे कि कोई भी सभ्य राज्य उसे सहन नहीं कर सकता है। इसलिये उस समय यह आवश्यक था कि ऐसे लोगों को तुरन्त ही ठिकाने लगा दिया जाय। इस प्रकार की सद्यस्कृत्यस्थिति में, इस प्रकार की परिस्थितियों में यदि आप यथोचित विधिसम्मत कार्यवाही के लिये, यथोचित वारण्ट निकालने के लिये, किसी शासनाधीश की प्रतीक्षा करते रहें अथवा सभी प्रकार की कानूनी रस्मों के पूरा होने की प्रतिक्षा करते रहें, तो यह सम्भव है कि न्याय हो ही नहीं और कानून तथा न्याय संकट में पड़ जायें। परन्तु, श्रीमान्, मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि वह एक अपूर्व तथा असाधारण परिस्थिति थी और हमें आशा है कि वह फिर कभी उत्पन्न न होगी। विधान इन असाधारण परिस्थितियों के लिये नहीं बनना चाहिये बल्कि साधारण परिस्थितियों के लिये और सतर्क लोगों के लिये बनना चाहिये, जिनसे यह आशा की जा सकती है कि वे कानून को मानने वाले होंगे और गुण्डों की दया पर ही निर्भर न रहेंगे। श्रीमान्, हम विधान बना रहे हैं इस

प्रकार के लोगों के लिये न उन असाधारण लोगों के लिये, जिन्होंने थोड़े समय के लिये अपनी सुधबुध खो दी हो क्योंकि उनके साथ असाधारण कार्यप्रणाली के अनुसार ही व्यवहार किया जा सकता है।

अन्य विधानों के समान इस विधान में भी सद्यस्कृत्यस्थिति के सम्बन्ध में प्रावधान हैं, जब कि साधारण विधान का परित्याग कर दिया जाता है। विधानों के प्रयोग में इस प्रकार के असाधारण अपवादों से मुझे कोई प्रेम नहीं है, परन्तु मेरी भी यह धारणा है कि सद्यस्कृत्यस्थिति में चाहे यह कितना ही खेदजनक क्यों न हो, वैधानिक स्वतंत्रताओं की कुछ काल तक उपेक्षा करनी होती है। परन्तु विधान बनाते समय हमें यह न समझना चाहिये कि हर समय सद्यस्कृत्यस्थिति ही उपस्थित है और इसलिये नागरिक स्वतंत्रताओं जैसी आधारभूत बातों को छोड़ न देना चाहिये।

इसलिये मैं इस विधान में यह निश्चयोक्ति चाहता हूं कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का आदर किया जायेगा तथा वह कानून द्वारा प्रत्याभूत होगा और कोई व्यक्ति बिना यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के न तो गिरफ्तार किया जायेगा, न हिरासत में रखा जायेगा और न कारागार में रखा जायेगा। उस कार्य-प्रणाली को आप प्रावहित कर सकते हैं। इस विधान के अधीन बनाये हुये कानून उस कार्य-प्रणाली को निश्चित कर सकते हैं। यदि यह कार्यप्रणाली पूर्णतया व्यवहार में लाई जाती है अथवा किसी सीमा तक व्यवहार में लाई जाती है, तो उस सीमा तक इस प्रकार का भय होने का कोई कारण नहीं है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य का निरादर किया जायेगा। फिर इसे प्रदान क्यों नहीं किया जाता और वैयक्तिक स्वातंत्र्य का उल्लेख क्यों नहीं किया जाता? स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश शासकों की शक्ति का जनतंत्रात्मक विधानों द्वारा प्रतिशोध का वैयक्तिक स्वातंत्र्य ही सदा से एकमात्र लक्षण रहा है। मेरे अधिकांश संशोधनों की जो दशा हुई है, उसे दृष्टि में रखते हुये मुझे यह शंका है कि मेरा यह प्रयास भी निरर्थक है। किन्तु जब तक मसौदाकारों का विरोध तर्कहीन ही न हो, मैं उनके मस्तिष्क में तथा अपने श्रोताओं के मस्तिष्क में यह भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहता कि वे तर्कहीन हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 446, 447 और 448। इन सबका आशय समान है। संशोधन संख्या 448 उपस्थित किया जा सकता है। वह श्रीमती रेणुका रे,डॉ. केस्कर, श्री सतीशचन्द्र और श्री मोहनलाल गौतम के नामों से है।

(संशोधन संख्या 448 और 446 उपस्थित नहीं किये गये।)

***महबूबअली बेग साहब बहादुर** (मद्रास: मुस्लिम): श्रीमान्, एक और संशोधन है, संशोधन संख्या 451 जो मेरे नाम से है, उसका सम्बन्ध खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) को निकालने से है।

***उपाध्यक्ष:** वह दूसरे संशोधन-समूह के अधीन आता है और उस पर बाद को विचार होगा।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** तब उसके बदले मैं संशोधन संख्या 447 को उपस्थित करता हूं। श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं:

"That clauses (2) to (6) of article 13 be deleted and the following proviso be added to clause (1):

'Provided, however that no citizen in the exercise of the said right, shall endanger the security of the State, promote ill-will between the communities or do anything to distrub peace and tranquility in the country."

[अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) से (6) तक निकाल दिये जायें और खण्ड (1) के साथ निम्नलिखित परादिक जोड़ दिया जाये:

'पर कोई नागरिक उक्त अधिकार को प्रयोग में लाने में राज्य की सुरक्षा को संकट में न डालेगा। विभिन्न सम्प्रदायों के बीच विद्वेष न फैलायेगा अथवा कोई ऐसा काम न करेगा जिससे देश की शान्ति और अक्षोभ भंग हो।']

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह दिखाई देता है कि जिन मूलाधिकारों की खण्ड (1) के अधीन गणना की गई है, उनका (2) से (6) तक के खण्डों में खण्डन कर दिया गया है क्योंकि ये मूलाधिकार प्रथम तो वर्तमान कानूनों के अधीन कर दिये गये हैं। यदि पहले जो कानून व्यवहार में रहे हैं, जो कानून मेरे मतानुसार गैरकानूनी हैं, जो कानून दमनशील रहे हैं, जो कानून नागरिकों को अपने मानुषिक अधिकारों से वंचित करने के लिये बनाये गये थे, खण्ड (2) से (6) तक में प्रावहित रहे, तो उनसे अब भी नागरिक इन अधिकारों से वंचित रहेंगे। मैं केवल अपराध-सम्बन्धी कानूनों के संशोधक कानून, समाचार-पत्र सम्बन्धी कानून और उन विभिन्न सुरक्षा-सम्बन्धी कानूनों की ओर संकेत करूंगा जो प्रान्तों ने बनाये हैं। इन (2) से (6) तक के खण्डों में यह भी कहा गया है कि यदि वर्तमान कानून कठोर तथा दमनशील न रहे और इन अधिकारों का खण्डन करने के लिये

पर्याप्त रूप से विस्तृत न रहे, तो अनुच्छेद 7 के अधीन परिभाषित राज्य, जिनमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और स्थानीय निकाय ही नहीं बल्कि स्थानीय अधिकारी भी सम्मिलित हैं, विध्वंस को सम्पूर्ण कर देंगे। मैं बढ़ा-चढ़ा कर कोई बात नहीं कह रहा हूं। मैं अभी यह बताऊंगा कि किसी उद्वेगवश मैंने यह आलोचना नहीं की है और न यह अतिशयोक्ति ही है। मूलाधिकार आधारभूत, स्थायी और पवित्र होते हैं और इनकी प्रत्याभूति इस उद्देश्य से होनी चाहिये कि कोई राज्य अपनी दमनशील शक्तियों को प्रयोग में न ला सके और इसी उद्देश्य से विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग का अधिकार-क्षेत्र पृथक्-पृथक् होना चाहिये। यदि विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के अधिकार-क्षेत्रों का पृथक्करण न हुआ तो ये मूलाधिकार साधारण अधिकारों का रूप ले लेंगे और आधारभूत न रहेंगे। मूलाधिकारों का यही आशय है, यही महत्व है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर ने अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा था कि मूलाधिकार परमाधिकार नहीं है। उनके इस कथन में कोई सन्देह नहीं है। वे जनसाधारण के हितों तथा राज्य की सुरक्षा के अधीन ही रहते हैं, परन्तु प्रश्न यह है कि इसका निर्णय कौन करेगा कि क्या किसी व्यक्ति ने इस प्रकार सीमा का उल्लंघन कर दिया है कि राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ गई है? श्रीमान्, मेरे मतानुसार तथा सर्वमान्य सिद्धान्तों के अनुसार इसका निर्णय अधिशासी-वर्ग अथवा विधान-मण्डल नहीं करेगा, बल्कि राज्य का न्यायाधीश-वर्ग करेगा कि किसी नागरिक ने सीमा का उल्लंघन इस प्रकार किया है अथवा नहीं कि राज्य की सुरक्षा संकट में पड़ गई है। अमेरिका के विधान-निर्माताओं ने उस प्रख्यात चौदहवें संशोधन द्वारा इस विभेद को स्वीकार किया था, जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह उल्लिखित है कि कोई कांग्रेस ऐसा कानून नहीं बना सकती है जिसमें भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में बिना जांच किये हुये निर्णय किया गया हो।

इंग्लैण्ड में भी, जहां कोई लिखित विधान नहीं है, दो महत्वपूर्ण तथा प्रभावपूर्ण अभिरक्षण रखे गये हैं। वे उस देश के कानून के अधीन हैं। उनके देश का कानून वह कानून है जिसके द्वारा वहां के लोगों को भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिली है और यथोचित विधिसम्मत कार्यप्रणाली के अभाव में उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। ये दो अभिरक्षण हैं। जिन आयंत्रणों को (2) से (6) तक के खण्डों में स्थान दिया गया है, वे केवल जर्मनी के विधान में मिलते हैं। केवल जर्मनी के विधान में ही मूलाधिकार उन कानूनों के

[महबूबअली बेग साहब बहादुर]

प्रावधानों के अधीन रखे गये हैं जिन्हें विधान-मण्डल बनाये। इसका अर्थ यह है कि नागरिक केवल उन्हीं अधिकारों को प्राप्त कर सकते थे, जो विधान-मण्डल उन्हें समय-समय पर प्रदान करता था। इससे मूलाधिकारों का मूलोच्छेदन ही हो जाता है और मूलाधिकार वास्तव में मूल-अधिकार नहीं रह जाते। श्रीमान्, मैं यह कहूंगा कि आप इससे परिचित हैं कि इसका परिणाम क्या हुआ। हिटलर अपने विधान-मण्डल से किसी भी कानून को पास करवा सकता था और जर्मनी के विधान-मण्डल द्वारा बनाए हुए कानूनों के प्रावधानों के अधीन बिना मुकद्दमा चलाये हुये ही जर्मनों को बन्दी-शिविरों में रख सकता था। हम जानते हैं कि इसका परिणाम क्या हुआ। सभी लोग एक ही वर्ग के बना दिये गये और उनको एक ही विचारधारा को अपनाने का आदेश दिया गया। जिस किसी का मतभेद हुआ, वह बन्दी-शिविर भेज दिया गया। इसका परिणाम हुआ फासीवाद और स्वच्छन्द शासन की स्थापना।

(इस अवसर पर उपाध्यक्ष महोदय ने समय की ओर ध्यान दिलाने के लिये घण्टी बजाई।)

मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे कुछ समय और दे दिया जाये। मैंने अभी-अभी इस विषय की व्याख्या आरम्भ की है।

***उपाध्यक्षः** मुझे खेद है कि बिना मेरी अनुमति के आपको समय नहीं मिल सकता। मैं यथासमय आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप समाप्त कर दें और अपनी जगह पर चले जायें। मुझे आशा है कि आप मेरी इच्छा का आदर करेंगे।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान्, इन्हीं कारणों से 30 अप्रैल सन् 1947 ई. को जब मूलाधिकार-सम्बन्धी समिति के सभापति सरदार पटेल ने इन मूलाधिकारों को उपस्थित किया था, इस आदरणीय सभा ने इस प्रकार के खण्डों को निकाल दिया था। उन्होंने इन सभी परादिकों को निकाल देने के लिये प्रस्ताव किया था। 30 अप्रैल सन् 1947 ई. के दिन जो विचार-विमर्श हुआ, उसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति कई प्रमुख सज्जनों ने भाग लिया था और इन सभी परादिकों को निकाल दिया गया था। भारत के प्रधान-मंत्री ने यह कहा था कि:

> "किसी मूलाधिकार पर किसी समय-विशेष की कठिनाई को ध्यान में रख कर विचार न करना चाहिये, किन्तु इस दृष्टि से विचार करना चाहिये कि आप उसे विधान में स्थायी रूप से स्थान दे रहे हैं।"

इसलिये, श्रीमान्, इस आदरणीय सभा ने 30 अप्रैल सन् 1947 को विचार-विमर्श के पश्चात्, जिसमें श्री मुन्शी प्रभृति प्रमुख सज्जनों ने भाग लिया था, इन परादिकों को निकाल दिया गया था। मेरा यह आदरपूर्ण निवेदन है कि उस निर्णय को न मानकर इन प्रावधानों को फिर स्थान देना एक प्रतिक्रियावादी कार्यवाही है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि हमें इसकी आज्ञा न देनी चाहिये। मेरा यह निवेदन है कि इन तीन परादिकों के रहने से मूलाधिकारों का पूर्णतया शून्यन हो जाता है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि तीन या चार दृष्टिकोणों से इस प्रश्न पर विचार किया जाये।

(उपाध्यक्ष महोदय ने समय की ओर ध्यान दिलाने के लिये फिर घण्टी बजाई।)

श्रीमान्, आपकी आज्ञा से.....

***उपाध्यक्ष:** जी नहीं। कई और लोग भी बोलने वाले हैं। मैं अब आपसे अनुरोध करता हूं कि आप मेरी आज्ञा मानें।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** श्रीमान्, मैं कुछ ही क्षण और चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं आपको काफी समय दे चुका हूं। अन्य लोग भी बोलने वाले हैं। मेरा उनके प्रति भी दायित्व है।

अब हम आगे के दो संशोधनों को उठायेंगे। पहला संशोधन संख्या 449 है और दूसरा संशोधन संख्या 453 है। इन दो में से मेरे विचार से संशोधन संख्या 453 अधिक विस्तृत है और उसे उपस्थित किया जा सकता है। वह डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या तथा अन्य लोगों के नाम से है। इस संशोधन पर भी एक संशोधन है।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर: श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह संशोधन संख्या 453† जो हम सब के नाम से है, रस्मी तौर से उपस्थित किया

---

†यह संशोधन इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 13 के खंड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जाये। मैं एक दूसरे कार्य-विवरण-पत्र में सूची 4 में देखता हूं कि इस संशोधन पर भी एक संशोधन किया गया है। श्रीमान्, मैं उस संशोधन को स्वीकार करता हूं। यदि आप कृपा करके उस संशोधन के उपस्थित किये जाने की आज्ञा दें, तो मैं उसे स्वीकार कर लूंगा; यह आवश्यक नहीं है कि यह संशोधन उपस्थित किया जाये।

***उपाध्यक्षः** श्री मुन्शी!

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। जब तक यह संशोधन उपस्थित न किया जाये, इस पर कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकता है। इसके बारे में यह नहीं समझा जा सकता है कि यह उपस्थित कर दिया गया है।

***उपाध्यक्षः** क्या आप यह चाहते हैं कि वे संशोधन को पढ़ दें! मैंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। श्री मुन्शी!

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अतिरिक्त सूची में दिये हुये संशोधन संख्या 86 को उपस्थित करता हूं, जो इस प्रकार है: संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 453 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

---

the State from making any law relating to libel, slander, defamation, offences against decency or morality or sedition or other matters which undermine the security of the State.'

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने के अपराध तथा राजद्रोह अथवा किसी अन्य ऐसे विषय से सम्बद्ध किसी वर्तमान कानून पर प्रभाव, तथा किसी नये कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध, न होगा।]"

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये :

'Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law relating to libel, slander, defamation, or any matter which offends against decency or morality or which undermines the security of, or tends to overthrow, the State.' "

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली या राज्य की उन्मूलन प्रवृत्ति रखने वाली किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, तथा किसी नई विधि के बनाने में राज्य को अवरोध, न होगा।]

श्रीमान्, इस संशोधन के औचित्य की चर्चा करने के पूर्व मैं एक शाब्दिक त्रुटि की ओर संकेत करना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर मुझे इसको ठीक करने की आज्ञा देंगे। मेरा यह प्रस्ताव है कि "shall affect the operation of any existing law" शब्दों के बाद "in so far as it relates to" शब्द रखे जायें क्योंकि इन शब्दों से इस वाक्यखण्ड का सम्बन्ध 'to libel etc.' से हो जाता है। इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है और मेरा विश्वास है कि मेरे माननीय मित्र इसे स्वीकार कर लेंगे।

जहां तक इस संशोधन के औचित्य का सम्बन्ध है, इसमें दो परिवर्तनों का प्रस्ताव है। मूल खण्ड में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द आया है। मूल खण्ड इस प्रकार है,–"relating to libel, slander, defamation, sedition or any other matter..." (अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह अथवा..) इस संशोधन में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द को निकालने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संशोधन में यह भी प्रयास किया गया है कि 'undermines the authority or foundation of the State' (राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी बात) के स्थान में.....

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य-प्रश्न करना है। हमारे सामने यह संशोधन नहीं है। सूची 4 में यह संख्या नहीं मिलती। मेरे विचार से

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

यह संशोधन आज ही घुमाया गया और इसलिये इस पर विचार नहीं किया जा सकता। हमें इस सम्बन्ध में जो कार्यवाही हो रही है, उसे समझने के लिये कुछ समय मिलना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से संशोधन के उपस्थित होने तक संशोधनों पर संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं। मेरे विचार से प्रत्येक सदस्य की मेज पर इसे रख दिया गया था।

***श्री के.एम. मुन्शीः** वास्तव में 458वें और 461वें संशोधन को एक ही संशोधन का रूप दे दिया गया है। श्रीमान्, इस संशोधन में कोई नई बात नहीं है।

***उपाध्यक्षः** श्री मुन्शी, आप बोलिये।

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं श्री मुंशी से प्रार्थना कर सकता हूं कि वे अपने संशोधन को एक बार और पढ़ दें? यह संशोधन किस पर किया गया है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** यह पृष्ठ 49 में दिये हुये संशोधन संख्या 453 पर एक संशोधन हैं। वास्तव में इसमें सूची में दिये हुये दो संशोधन सम्मिलित कर दिये गये हैं। यह इस प्रकार है:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये :

'(2) Nothing in sub-clause (a) of clause (1) of this article shall affect the operation of any existing law, or prevent the State from making any law relating to libel, slander, defamation."

[इस अनुच्छेद के खण्ड 1 के उपखण्ड (क) की किसी बात से अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली, किसी बात सम्बन्धी किसी वर्तमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव, तथा किसी नई विधि के बनाने में राज्य को अवरोध, न होगा।]

परिवर्तन यह किया गया है कि 'sedition' (राजद्रोह) शब्द निकाल दिया गया है।

"or any matter which offends against decency or morality" (शील अथवा शिष्टता का खण्डन करने वाली कोई बात) शब्द रखे गये हैं।

इसके अतिरिक्त एक परिवर्तन और है।

"or which undermines the security of, or tends to overthrow the State" (राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली अथवा राज्य के उन्मूलन प्रवृत्ति वाली)

संशोधन संख्या 461 की यही शब्दावली है। उसका उद्देश्य.....

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्त प्रान्त: जनरल): क्या मैं यह समझूं कि 'morality' (शील) शब्द निकाल दिया गया है?

श्री के.एम. मुंशी: मैंने 'morality' (शील) शब्द को पढ़ा था।

***उपाध्यक्ष:** जहां तक उसका सम्बन्ध है आपको किसी प्रकार की शंका न होनी चाहिये।

श्री के. एम. मुन्शी: यह सभा मुझे इस प्रकार की कोई बात करने की आज्ञा न देगी। श्रीमान्, इस संशोधन की विशेषता यह है कि इसमें 'राजद्रोह' शब्द को निकालने का प्रयास किया गया है और उसके स्थान में उससे अच्छी शब्दावली अर्थात्—"राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने वाली अथवा राज्य के उन्मूलन प्रवृत्ति वाली" रखी गई हैं। उद्देश्य यह है कि 'देशद्रोह' शब्द निकाल दिया जाये, क्योंकि इसका आशय संदेहात्मक है और इसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है और इसके स्थान में ऐसे शब्द रखे जायें जो स्पष्ट रूप से राज्य के विरुद्ध किसी अपराध को व्यक्त करते हैं।

***श्री अमियकुमार घोष** (बिहार : जनरल): मैं इस सम्बन्ध में एक सूचना चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि बिना किसी संशोधन को प्रस्तुत किये हुये क्या उस पर कोई संशोधन उपस्थित किया जा सकता है?

***उपाध्यक्ष:** संशोधन रस्मी तौर पर उपस्थित किया जा चुका है।

***श्री के.एम. मुन्शी:** मैं यह बता रहा था कि 'राजद्रोह' शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है और यह इस सभा के सदस्यों के लिये ही नहीं बल्कि संसार के सभी न्यायालयों के लिये संदेह का कारण रहा है। इसकी परिभाषा बहुत

[श्री के.एम. मुन्शी]

साधारण है और वह बहुत पहले अर्थात् सन् 1868 ई. में की गई थी। उसके अनुसार "राजद्रोह में ऐसा सब व्यवहार सम्मिलित है, चाहे उसका शाब्दिक रूप हो अथवा कार्यरूप हो अथवा लिखित रूप हो, जिसका उद्देश्य राज्य के अक्षोभ को भंग करना हो अथवा अनजान लोगों को राज्य का उन्मूलन करने के लिये प्रेरित करना हो"। परन्तु वास्तव में व्यवहार में इस शब्द की गति विचित्र हुई है। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में सभा करना अथवा जलूस निकालना राजद्रोह समझा जाता था। किसी समय किसी ऐसे मत को ग्रहण करना भी, जिससे राज्य के विरुद्ध विद्वेष उत्पन्न हो, राजद्रोह समझा जाता था। हमारी दण्ड-संहिता की कुख्यात धारा 124-ए किसी समय इतने इतने व्यापक ढंग से प्रयोग में लाई जाती थी कि मुझे स्मरण है, एक मामले में एक जिलाधीश की आलोचना पर भी वह लागू की गई थी। तब से लोकमत बहुत कुछ बदल गया है और चूंकि अब हमारा शासन जनतंत्रात्मक है, हमें शासन की आलोचना का स्वागत करना चाहिये और उसमें तथा इस प्रकार की उत्तेजना फैलाने में हमें विभेद करना चाहिये जिससे सुरक्षा और सुव्यवस्था ही, जिस पर सभ्य जीवन आधृत रहता है, संकट में पड़ जाये और राज्य का ही उन्मूलन हो जाये। इसलिये यह शब्द 'राजद्रोह' निकाल दिया गया है। वास्तव में जनतंत्र का प्राण ही सरकार की आलोचना है। दलबन्दी से शासन-व्यवस्था में उलटफेर करने के सम्बन्ध में अवश्य ही मतप्रकाश होता है, परन्तु वह जनतंत्र की आधार—शिला है और इसलिये विभिन्न शासनप्रणालियों के सम्बन्ध में मतप्रकाश का स्वागत करना चाहिये क्योंकि इससे जनतंत्र सजीव हो उठता है। इसलिये इस संशोधन का उद्देश्य इस प्रकार की दो स्थितियों में अन्तर करना है। हमारे संधान-न्यायालय ने निहारेन्दु दत्त मजूमदार बनाम सम्राट के मुकद्दमे में, जिसका उल्लेख संधान-न्यायालय के तीसरे और चौथे प्रतिवेदनों में है, इसमें विभेद किया है कि जिस समय भारतीय दण्ड-संहिता बनाई गई थी, उस समय 'राजद्रोह' का क्या अर्थ था और सन् 1942 ई. में उस शब्द से क्या समझा जाता था। भारत के मुख्य न्यायाधीश के निर्णय के एक उद्धरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस समय राज्य के विरुद्ध अपराध से क्या समझा जाता है। उसके पृष्ठ 50 में कहा गया है कि—"राजद्रोह इस कारण अपराध नहीं माना गया है कि ऐसा करने से सरकारों के जर्जरित अहंकार की क्षतिपूर्ति होती है, बल्कि इसलिये कि सरकार और कानून के प्रति निष्ठा नहीं दिखाई गई है क्योंकि यदि उनका आदर नहीं किया गया तो केवल अराजकता ही फैल सकती है। इस प्रकार

लोक दुर्व्यवस्था अथवा लोक-दुर्व्यवस्था की तर्कयुक्त आशा अथवा सम्भावना ही इस अपराध का सार है। जिन कार्यों अथवा शब्दों के सम्बन्ध में आपत्ति की गई हो, उनसे या तो दुर्व्यवस्था के लिये उत्तेजना उत्पन्न होनी चाहिये या तर्कपूर्ण लोगों की दृष्टि में उनका यह उद्देश्य अथवा इस प्रकार की प्रवृत्ति होनी चाहिये।"

इसलिये इस संशोधन में ऐसे शब्द रखे गये हैं जिनसे 'राजद्रोह' का वह अर्थ यथेष्ठ रूप से व्यक्त होता है जिसे किसी जनतंत्रात्मक राज्य की आज की पीढ़ी समझती है और इस प्रकार वास्तव में कोई सारवत् परिवर्तन नहीं किया गया है। केवल संदेहात्मक शब्द 'राजद्रोह' को इस अनुच्छेद से निकालने का प्रयास किया गया है। अन्यथा यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि हम भारतीय दण्ड-संहिता की धारा 124-ए को, जो कुछ समय पूर्व एक अच्छा कानून समझा जाता था, अथवा उसके आशय को बनाये रखना चाहते हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** स्पष्टीकरण के उद्देश्य से क्या मैं अपने विद्वान मित्र श्री मुन्शी से यह पूछ सकता हूं कि "any other matter" (किसी ऐसे अन्य विषय) वाक्यांश से "other" (अन्य) शब्द निकाल देने से इस संशोधन के अर्थ के सम्बन्ध में क्या कुछ संदेह अथवा कठिनाई उत्पन्न न हो जायेगी? यदि वे विधान के मसौदे के अनुच्छेद 13 को देखें तो वे उसमें "any other matter" (किसी अन्य बात) शब्द प्रयुक्त पायेंगे। यहां "other" (अन्य) शब्द को निकाल दिया गया है जिसका अर्थ यह होगा कि जहां तक अपमान-वचन, मान-हानि और अपमान-लेख का सम्बन्ध है उनसे शिष्टता अथवा शील की हानि नहीं हो सकती, किन्तु किसी अन्य बात से हो सकती है। क्या श्री मुन्शी यह कहना चाहते हैं कि मान-हानि, अपमान-वचन अथवा अपमान-लेख से शिष्टता अथवा शील की हानि नहीं होती है?

***श्री के.एम. मुन्शीः** इस अनुच्छेद के मूल खण्ड के मसौदे में ये शब्द थे—

"libel, slander, defamation, sedition or any other matter which offends against decency or morality or undermines the authority or foundation of the State."

(अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, राजद्रोह अथवा शिष्टता या शील पर आघात या राज्य के प्राधिकार अथवा उसके आधार को जर्जर करने वाली किसी अन्य बात सम्बन्धी...) अपमान-वचन और मानहानि को शिष्टता अथवा शील पर आघात से सम्बद्ध करना आवश्यक नहीं है और न उनसे राज्य का

[श्री के.एम. मुन्शी]

अधिकार ही जर्जर होता है। "any matter" (किसी ऐसे विषय) शब्द एक स्वाधीन श्रेणी की ओर संकेत करते हैं। दूसरी श्रेणी किसी ऐसे विषय की है, जो राज्य के विरोध में हो। इसलिये 'other' (अन्य) शब्द अनुपयुक्त होगा।

***श्री एच.वी. कामतः** अनुच्छेद के मसौदे में 'other' (अन्य) शब्द का संकेत अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह इन सभी की ओर है।

***श्री के.एम. मुन्शीः** मैं अपने माननीय मित्र से सहमत नहीं हूं।

***उपाध्यक्षः** क्या आप 449वें संशोधन को उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी हां।

***उपाध्यक्षः** उस पर मत लिया जायेगा। अब हम संशोधन संख्या 450 451, 452, 453, 465 और 478 पर आते हैं। इन सबका आशय समान है और इसलिये इन सभी पर एक साथ विचार होना चाहिये। संशोधन संख्या 450 को उपस्थित करने की आज्ञा दी जाती है।

***सरदार हुकुम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3), (4), (5) और (6) निकाल दिये जायें।"

श्रीमान् यदि अनुच्छेद 13(1) के उपखण्ड (क), (ख) और (ग) को स्वतंत्र रूप से देखा जाये तो उनका उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि राज्य की बाध्य करने की शक्ति के होते हुये व्यक्ति को रक्षण प्रदान किया जाये। परन्तु अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के उपखण्डों से इन रक्षण-सम्बन्धी खण्डों का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इनमें यह कहा गया है कि अनुच्छेद 13 के खण्ड (क), (ख) और (ग) की किसी बात से किसी भी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा अर्थात् अपराध-सम्बन्धी कानून का संशोधन अधिनियम, समाचार-पत्र-सम्बन्धी अधिनियम और अन्य कई ऐसे सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियमों पर कोई प्रभाव न पड़ेगा जो उपखण्ड (1) में अगणित अधिकारों का खण्डन करते हैं और जो मानवी स्वतंत्रताओं का दमन करने के लिये बनाये गये थे। यदि ये पहले की तरह जारी रहे तो जिस परिवर्तन के लिये इतना शोर किया गया है,

वह कहां होने जा रहा है? अधिकारों को मूलाधिकार घोषित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा की जाये, ताकि तत्कालीन साधारण विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग उसमें हस्तक्षेप न कर सकें। अनुच्छेद 13(1) में जिन अधिकारों की गणना की गई है वे इस प्रकार के हैं कि यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से भी उनको त्यागना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता है। विशेषतया तत्कालीन सरकार तो, जब तक कोई विशेष परिस्थिति उपस्थित न हो जाये, उनका खण्डन कर ही नहीं सकती। परन्तु यहां सम्मेलन के स्वातंत्र्य को, समाचार-पत्रों के स्वातंत्र्य को और अन्य स्वातंत्र्यों को विचित्र रूप दे दिया गया है और उन्हें बिल्कुल ही विधान-मण्डल की स्वेच्छा पर निर्भर कर दिया गया है। इससे सारी खूबसूरती जाती रही है। इस खण्ड के अधीन वर्तमान कानूनों को ही नहीं लाया गया है, किन्तु राज्य को अपमान-लेख, अपमान-वचन आदि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कानून बनाने की असाधारण शक्ति दे दी गई है। यह कहा जा सकता है कि राजद्रोह, अपमान-वचन, अपमान-लेख आदि के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति तथा अधिकार-क्षेत्र प्राप्त होना ही चाहिये। परन्तु अमेरिका जैसे अन्य देशों में सर्वोच्च न्यायालय ही सारी परिस्थिति और वातावरण को ध्यान में रख कर इस सम्बन्ध में निर्णय कर सकता है और यह कह सकता है कि वैयक्तिक स्वातंत्र्य की पर्याप्त रक्षा हुई है, अथवा नहीं अथवा विधान-मण्डल ने नागरिक के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में हस्तक्षेप किया है अथवा नहीं। तुला न्यायाधीश-वर्ग के हाथ में रहती है और वे सभी सभ्य देशों में सच्चाई से तोलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप नागरिक की रक्षा होती रही है और उसकी स्वतंत्रता के सम्बन्ध में विधान-मण्डल अनुचित रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सके हैं। परन्तु इन (2) से (6) तक के उपखण्डों को स्थान देकर हमारे विधान के अधीन एक विचित्र प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है। माननीय प्रस्तावक महोदय ने यह कह कर इन उपखण्डों का समर्थन किया है कि इन आयंत्रणों में से प्रत्येक के सम्बन्ध में वे कम से कम एक उदाहरण दे सकेंगे। यही एक अन्तर है जहां इन देशों में इन स्वतंत्रताओं के क्षेत्रों का और इन आयंत्रणों की परिधि का नियमन न्यायाधीश-वर्ग करता है, अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों से विधान-मण्डल को यह शक्ति दे दी गई है। अनुच्छेद 13 (1) (क) में भाषण-स्वातंत्र्य का अधिकार दिया गया है, परन्तु राज्य के आधार को जर्जर करने वाले विषयों के सम्बन्ध में 13 (2) के अधीन विधान-मण्डल को किसी भी अधिनियम को बनाने की शक्ति देकर इस अधिकार को आयंत्रित कर दिया गया है। यह प्रतीत होता है कि सम्मेलन का अधिकार 13 (1) (ख) के अधीन

[सरदार हुकुम सिंह]

प्रत्याभूत है, परन्तु 13 (3) में यह प्रतिबन्ध रख दिया गया है कि लोक-व्यवस्था के हित में कानून बनाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त 13(4) से 13(6) तक के अधीन 'जनसाधारण के हित में' इन स्वतंत्रताओं को आयंत्रित करने के लिये किसी प्रकार के कानून बनाये जा सकते हैं। जो कोई कार्यवाही की जाये अथवा जो कोई कानून बनाया जाये, उसके बारे में इसका निर्णय कौन करेगा कि यह "जनसाधारण के हित में है" अथवा "लोक-व्यवस्था के हित में है" अथवा उसका सम्बन्ध किसी ऐसे विषय से है जो "राज्य के प्राधिकार को अथवा आधार को जर्जर करता है"? इससे सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र बहुत संकुचित हो जायेगा। उसके सम्मुख केवल एक ही प्रश्न रह जायेगा और वह यह होगा कि क्या विचाराधीन कानून "लोक-व्यवस्था के हित में है" अथवा नहीं। न्यायालय के निर्णय के लिये केवल यही विषय रह जायेगा कि विधान-मण्डल का अधिकार क्या है और जब उसे एक बार वह ज्ञात हो जायेगा कि सरकार का यह सच्चा विश्वास था कि "लोक-व्यवस्था के हित में" विचाराधीन कानून आवश्यक था, तो फिर उसके हस्तक्षेप के लिये कुछ न रह जायेगा। अनुच्छेद 13(3) के परादिक की शब्दावली इस प्रकार है कि सर्वोच्च न्यायालय को इसका अधिकार ही नहीं रह जाता कि वह इस सम्बन्ध में विचार करे और निर्णय करे कि वास्तव में ऐसी परिस्थिति उपस्थित थी कि इस प्रकार का कानून बनाना आवश्यक था। न्यायालय को जो प्रावधान रखे गये हों, उनके सम्बन्ध में तथा जो आयंत्रण लगाये गये हों, उनके सम्बन्ध में निर्णय करने का कोई अधिकार न रह जायेगा।

इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये हम 13(2) के अधीन बनाये हुये राजद्रोह-सम्बन्धी कानून का उदाहरण ले सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को केवल इसका निर्णय करना होगा कि जो कानून बनाया गया है वह 'राजद्रोह' के सम्बन्ध में है या नहीं। यदि उसका 'राजद्रोह' से सम्बन्ध हो तो न्यायाधीश-वर्ग को यह निर्णय करना होगा कि वह न्याय्य है। यह न्यायाधीश का कर्त्तव्य न रह जायेगा कि वह यह देखें कि जो प्रावधान रखे गये हैं वे कहीं दमनशील अथवा अन्यायपूर्ण तो नहीं हैं। यदि 13(2) के अधीन रखा हुआ आयंत्रण उसी रूप में रहने दिया जायेगा, तो नागरिकों को राजद्रोह के सम्बन्ध में किसी भी कानून को गैरकानूनी घोषित कराने का अवसर ही नहीं मिलेगा, चाहे वह कितना ही दमनशील क्यों न हो और चाहे 13(1) (क) के अधीन दी हुई स्वतंत्रतायें उससे कितनी ही आयंत्रित क्यों न हो और उनका कितना ही शून्यन क्यों न हो।

"न्यायालय" केवल इस दिशा में विचार करने के लिये बाध्य हो जायेगा कि विधान के अधीन संसद को राजद्रोह के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भी कानून बनाने का अधिकार दिया गया है और उसने ऐसा ही किया है। इसमें विधान का कहीं खण्डन नहीं होता। इसके विपरीत मसौदे में पहले से ही यह कह दिया गया है कि यदि संसद राजद्रोह के सम्बन्ध में कोई कानून बनाता है, तो वह न्याय्य है। 13 (1) में जो स्वातंत्र्य वर्णित है, उसकी भी यही दशा हो जाती है क्योंकि (2) से (6) तक के खण्डों से उसका शून्यन हो जाता है।

यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि राष्ट्रीय सरकार के अधीन विधान-मण्डल पर, लोगों के प्रतिनिधियों पर, जो प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर चुने जायेंगे, इसका विश्वास किया जा सकता है और यह विश्वास करना भी चाहिये कि वे नागरिकों के अधिकारों की पूर्णतया रक्षा करेंगे। परन्तु यह ठीक ही कहा गया है कि, "यद्यपि अधिशासी-वर्ग के आक्रमण का अब कोई भय नहीं रह गया है, परन्तु विधान-मण्डल का अत्यधिक हस्तक्षेप होने लगा है और आधुनिक काल में इसी हस्तक्षेप के भय से नागरिक को मुक्त करने के लिये मूलाधिकारों की घोषणा की जाती है जैसे कि पहले वह स्वेच्छाचारी राजाओं के अत्याचार से उसे मुक्त करने के लिये की जाती थी।"

अधिकार-पत्र का उद्देश्य ही यह होता है कि ये अधिकार साधारण विधान-मण्डल के प्रभाव में न रहें, परन्तु यदि हम विधान-मण्डल को ही, जो जनतंत्रात्मक राज्य में केवल एक राजनैतिक दल का रूप ले लेता है, इन अधिकारों के सम्बन्ध में, जो पत्र में पवित्र तथा मूलाधिकार घोषित किये गये हैं, यह निर्णय करने का अधिकार दे दें कि इनका कब शून्यन होता है, जैसा कि हमने अनुच्छेद 13 के (2) से (6) तक के खण्डों द्वारा किया है तो हम इन स्वतंत्रताओं को केवल काल्पनिक ही बना रहे हैं।

जब संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे अन्य देशों में न्यायाधीश-वर्ग पर ही पूर्ण विश्वास किया गया है और दीर्घ काल के अनुभव के पश्चात् यह प्रमाणित हुआ है कि ऐसा करना अनुचित न था, तो हम भी वैयक्तिक स्वतंत्रताओं और राज्य के हितों के रक्षण का भार इसी वर्ग को क्यों न सौंपे और क्यों स्वतंत्रता को इतने अपवादों से और इन उप-खण्डों से क्यों संकुचित कर दें?

श्रीमान्, मैं सभा से यह सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** सूची में आगे का संशोधन वैकल्पिक संशोधन संख्या 451 है, जो मि. महबूबअली बेग के नाम से है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुरः** श्रीमान् मैं उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (2), (3) (4), (5) और (6) के पहले निम्नलिखित शब्द प्रविष्ट किये जायें:

'Without prejudice and subject to the provisions of article 8.'

(अनुच्छेद 8 के प्रावधानों के अधीन तथा बिना उनके विपरीत गये हुये।)"

इस संशोधन को मैंने दो उद्देश्यों से उपस्थित किया है। पहले तो मैं इस सम्बन्ध में डॉ. अम्बेडकर के तथा मसौदा-समिति के विचारों से परिचित होना चाहता हूं कि इन परादिकों से अनुच्छेद 8 का किस प्रकार सम्बन्ध है। यह पूछा जा सकता है कि इन (2) से (6) तक के खण्डों पर अनुच्छेद 8 के आदेशों का प्रभाव पड़ता है अथवा नहीं। यदि इन पर पड़ता है तो मैं आपकी अनुमति से अनुच्छेद 8 की ओर संकेत करना चाहता हूं। उसमें कहा गया है:

"इस विधान के प्रारम्भ होने के सद्य:पूर्व भारत के राज्य-क्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस मात्रा तक शून्य होंगे जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं।"

"इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं" शब्दों का अपमान-लेख सम्बन्धी वर्तमान कानूनों पर तथा सम्मेलन के अधिकारों के प्रयोग पर लगाये हुये आयंत्रणों के सम्बन्ध में वर्तमान कानूनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका अर्थ यह है कि (2) से (6) तक के अनुच्छेदों में जिन वर्तमान कानूनों का उल्लेख किया गया है, उन सबका अनुच्छेद 8 के अधीन शून्यन नहीं होता है। अनुच्छेद 15 के नीचे जो टिप्पणी दी हुई है उससे पता लग जाता है कि उद्देश्य क्या है, क्योंकि उसमें बताया हुआ है कि 'personal' (वैयक्तिक) शब्द क्यों समाविष्ट किया गया है। उसमें कहा गया है:

"समिति की यह सम्मति है कि 'liberty' (स्वातंत्र्य) शब्द के आगे 'personal' (वैयक्तिक) शब्द विशेषण के रूप में रखा जाना चाहिये, क्योंकि यदि ऐसा न किया गया तो इसका विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है और इसमें उस स्वातंत्र्य को भी सम्मिलित किया जा सकता है जिसका अनुच्छेद 13 के अधीन उल्लेख है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि किसी वर्तमान कानून का सम्बन्ध अपमान-लेख से अथवा सभाओं से या सम्मेलनों से अथवा भाषण या अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से हो तो वह बना रहता है, यद्यपि अनुच्छेद 8 में यह कहा गया है कि यदि कोई प्रवृत्त कानून मूलाधिकारों से असंगत हो तो उसका शून्यन हो जायेगा। इस प्रकार हम इस स्थिति में पड़ जाते हैं। पिछले दिनों में वर्तमान कानूनों द्वारा जैसे कि अपराध-सम्बन्धी कानून के संशोधक अधिनियम, समाचार-पत्र सम्बन्धी अधिनियम अथवा सुरक्षा-सम्बन्धी अधिनियमों द्वारा जो आयंत्रण रखे गये हैं, वे खण्ड (1) में उल्लिखित स्वतंत्रताओं से असंगत हैं। वे प्रवर्तन में रहेंगे और उनका शून्यन नहीं हुआ है। इसके स्वभावत: यह अर्थ लगाया जा सकता है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है। विधान द्वारा विधान-मण्डल को अथवा अधिशासी-वर्ग को कुछ शक्तियां दी गई हैं। यह दूसरी बात है कि कोई न्यायालय इस कार्यवाही के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर आपत्ति कर सकता है अथवा नहीं। मेरा यह मत है कि जब विधान में ही विधान-मण्डल को अथवा इस प्रसंग में राज्य को, जिसमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग, स्थानीय निकाय और इस प्रकार की अन्य संस्थायें सम्मिलित हैं, शक्ति देने के सम्बन्ध में प्रावधान है तो न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र समाप्त हो जाता है क्योंकि न्यायाधीश यह कहेंगे कि जब विधान ही में विधान-मण्डल को नागरिक के अधिकारों का अपहरण करने, उनको आयंत्रित करने अथवा सीमित करने का अधिकार दिया गया है तो वे कानून के अथवा व्यवस्था के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर विचार नहीं कर सकते जब तक कि वह अनधिकृत रूप से प्रयुक्त न हो। इसका निर्णय अधिकारी-वर्ग ही कर सकता है कि क्या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि किसी विशेष कानून को बनाना अथवा व्यवस्था को स्थापित करना आवश्यक हो गया है। फिर भी मैं मसौदा समिति के सभापति महोदय से यह पूछना चाहता हूं कि इस परिस्थिति में अर्थात् जब कि विधान में ही यह प्रावधान हो कि विधान-मण्डल को अथवा अधिशासी वर्ग को यह शक्ति प्राप्त है कि वे खण्ड (1) में उल्लिखित अधिकारों को संकुचित करने के लिये आज्ञा दे सकते हैं अथवा कानून बना सकते हैं; तो क्या न्यायालय उस आज्ञा अथवा कानून के औचित्य पर अथवा अनौचित्य पर विचार कर सकता है और किसी कानून को अमान्य अथवा किसी अधिनियम को अन्याय्य घोषित कर सकता है? मेरे विचार से न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र विधान में स्पष्ट शब्दों में यह कह कर समाप्त हो जाता है कि राज्य को लोक-व्यवस्था के हित में अपमान-लेख अथवा सम्मेलन के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त होगी और...।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): श्रीमान् यदि मुझे अपने माननीय मित्र के भाषण के बीच में बोलने दिया जाये तो मैं यह कहूंगा कि मैं उनकी बात समझ गया हूं और मैं इसका दायित्व ग्रहण करता हूं कि मैं उनको उसके अर्थ के सम्बन्ध में सन्तुष्ट कर दूंगा। इसलिये उनके लिये कि इस पर अब अधिक विस्तार से बोलना अनावश्यक है।

***महबूबअली बेग साहब बहादुर:** तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह हैं अब जो व्यवस्था स्थापित होगी वह है। संसदात्मक जनतंत्र की व्यवस्था अथवा किसी राजनैतिक दल का उसके अधिशासी-वर्ग अथवा उसकी सरकार द्वारा शासन। इस संसदात्मक जनतंत्र में अथवा एकदल शासन में हम समझ सकते हैं कि लोगों को किस सीमा तक मूलाधिकार प्राप्त होंगे। इस स्थिति में जन-साधारण के हित में क्या यह आवश्यक न होगा और एक बुद्धिमत्ता की बात न होगी कि एक दल द्वारा शासित भविष्य के विधान-मण्डलों को अथवा अधिशासी-वर्ग को इस विधान द्वारा ही शक्तियां न प्रदान की जायें? जैसी कि कहावत है कि "शक्ति से भ्रष्टाचार होता है" और यदि इस विधान की ही धाराओं द्वारा एक-दल शासन के हाथ में अत्यन्त शक्ति दे दी गई तो उसका विधान-मण्डल अथवा अधिशासी-वर्ग भी अत्यन्त भ्रष्टाचारी हो जायेगा। इसलिये, मेरा यह प्रस्ताव है कि यदि ये सब परादिक आवश्यक हैं तो उन्हें इस प्रावधान के अधीन कर देना चाहिये कि उपखण्ड (1) में उल्लिखित स्वतंत्रताओं से असंगत कोई कानून न बनाया जायेगा और न लागू किया जायेगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हमारे सामने जो संशोधन-समूह है उसमें संशोधन संख्या 454, 455, 469, 475, 481 और 485 का प्रथम भाग है। इन सबका आशय समान है और मैं संशोधन संख्या 454 को उपस्थित करने की आज्ञा देता हूं। इस संशोधन पर भी कुछ संशोधन हैं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के (2), (3), (4) (5) और (6) खण्डों में से 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्द निकाल दिये जायें।"

इस खण्ड पर माननीय डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन प्रस्तुत किया है

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि जब आप संशोधन संख्या 454 को उपस्थित करें तो उसे अपने नये संशोधन के साथ उपस्थित करें?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधन संख्या 454 को उपस्थित कर चुका हूं और उस पर एक संशोधन प्रस्तुत किया गया है जो माननीय डॉ. अम्बेडकर के नाम से हैं। इस पर मैंने एक संशोधन उपस्थित किया है जो आज की सूची में संख्या 3 देकर दिखाया गया है। मैंने संशोधन संख्या 454 पर दो अन्य संशोधन भी उपस्थित किये हैं। इसलिये मैं आपकी अनुमति से उन सबको एक साथ उपस्थित करूंगा। श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधनों पर संशोधन की सूची 1 के संशोधन संख्या 49 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड में जहां 'any' (कोई) शब्द दुबारा आया है उसके स्थान में 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये और उक्त खण्ड में से 'Sedition' (राजद्रोह) शब्द को निकाल दिया जाये।

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3), (4), (5) और (6) में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के पहले 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये।"

इन संशोधनों का यह उद्देश्य है: मैं यह चाहता हूं कि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्दों को निकाल दिया जाये और यह भी चाहता हूं कि (3), (4), (5) और (6) खण्डों में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के पहले 'reasonable' (न्यायपूर्ण) शब्द रखा जाये। मैं यह भी चाहता हूं कि खण्ड (2) में जहां 'any' (कोई) शब्द दूसरी बार आया है उसके स्थान में 'reasonable' (न्यायोचित) शब्द रखा जाये।

यदि सभा ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तो खण्ड (3) इस प्रकार हो जायेगा:

"Nothing in sub-clause (b) of the said clause shall prevent the State from making any law, imposing in the interests of public order reasonable restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause."

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर न्यायोचित आयंत्रणों का आरोप करने वाले किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।]"

जहां तक संशोधन संख्या 454 के प्रभाव का सम्बन्ध है यदि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून पर प्रभाव, अथवा), शब्द निकाल दिये जायें तो इसके फलस्वरूप इस समय प्रवृत्त सभी कानून समाप्त न हो जायेंगे परन्तु केवल ऐसे कानून अथवा ऐसे कानूनों के अंश समाप्त हो जायेंगे जो अनुच्छेद 13 में वर्णित मूलाधिकारों से असंगत हो और अनुच्छेद 8 प्रभाव में रहेगा।

अब मैं इनमें से एक एक संशोधन पर विचार करूंगा। पहले मैं 454वें संशोधन को उठाना चाहता हूं।

आप देखेंगे कि जहां तक अनुच्छेद 8 का सम्बन्ध है वह कानूनों के उन अंशों को छोड़ कर जो भाग 3 द्वारा प्रदत्त मूलाधिकारों से असंगत हैं, इस समय प्रवृत्त सभी कानूनों को जीवित रखता है। ये शब्द 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा)...

उपाध्यक्ष: आप किसी ऐसी बात पर कैसे विचार कर सकते हैं जिसे डॉ. अम्बेडकर ने उपस्थित न किया हो?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** पहले तो इस सभा ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया है कि सभी संशोधन, चाहे वे रस्मी तौर पर उपस्थित न किये गये हों, उपस्थित किये हुये समझे जायेंगे। दूसरी बात यह है कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन उपस्थित करने के बाद यदि आप मुझे एक बार और बोलने देंगे तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। केवल समय की बचत के लिये मैंने यह प्रणाली अपनाई है और मैंने इसके लिये आपकी अनुमति ले ली थी यद्यपि इसकी आवश्यकता न थी।

***उपाध्यक्ष:** अच्छी बात है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** धन्यवाद। मैं इस सम्बन्ध में बोल रहा था कि 'affect the operation of any existing law or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्दों का क्या प्रभाव होगा और मैंने सभा से यह निवेदन किया था कि जहां तक अनुच्छेद 8 के शब्दों का सम्बन्ध है, यदि ये शब्द उनमें सम्मिलित न भी हों तो सभी वर्तमान कानून प्रवर्तन में रहेंगे। भाग 3 के अनुच्छेद 8 के कारण वे समाप्त न हो जायेंगे। यह अनुच्छेद इस प्रकार है:

> "इस विधान के प्रारम्भ होने से सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस मात्रा तक शून्य होंगे, जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं।"

इसलिये वास्तव में विधान इसको प्रभाव में लाना चाहता है कि जिस सीमा तक वे कानून असंगत हैं वहां तक वे शून्य समझे जायेंगे। विशेष प्रवृत्त रहेंगे। इसलिये यदि 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) शब्द न रहेंगे तो इससे कोई अन्तर न पड़ेगा। यदि आप उस संशोधन की परीक्षा करें जिसे डॉ. अम्बेडकर उपस्थित करने वाले हैं तो उसका भी वही प्रभाव होगा क्योंकि उनके संशोधन में "in so far as it imposes" (जहां तक वह यह आरोप करता है कि) शब्द आये हैं। इस प्रकार मेरे संशोधन के अनुसार और उनके संशोधन के अनुसार भी अनुच्छेद 13 पर अनुच्छेद 8 का प्रभाव पड़ता है। यदि सभा मेरे संशोधन संख्या 454 को स्वीकार कर लेती है तो डॉ. अम्बेडकर का संशोधन अनावश्यक हो जाता है।

***उपाध्यक्षः** मुझे यह प्रतीत होता है कि यदि डॉ. अम्बेडकर अपना संशोधन उपस्थित करें तो आपका संशोधन अनावश्यक हो जाता है।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मेरा संशोधन फिर भी आवश्यक होगा क्योंकि उसका सम्बन्ध अन्य विषयों से भी है।

***उपाध्यक्षः** मैं इस विषय पर आपसे बहस नहीं करना चाहता।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** इस विधान में कई खण्ड ऐसे हैं जिनमें वर्तमान कानूनों को जहां तक हो सके बनाये रखने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास सबसे पहले अनुच्छेद 8 में किया गया है। अनुच्छेद 8 के अनुसार केवल

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

असंगति की सीमा तक इन कानूनों का शून्यन हो जायेगा। इसलिये आगे अधिक प्रयास करने की आवश्यकता न थी।

अनुच्छेद 27 में फिर कुछ ऐसे कानूनों को बनाये रखने का प्रयास किया गया है जो अनुच्छेद 27 के परादिक की परिधि में आते है। इतने से संतोष न होकर विधान में एक और अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 307 रखा गया है जो इस प्रकार है:

> "इस विधान के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये इस विधान के प्रारम्भ के सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में सब प्रवृत्त कनून तब तक प्रवृत्त रहेंगे जब तक कि समर्थ विधान-मण्डल या अन्य समर्थ प्राधिकारी द्वारा वे परिवर्तित, विखण्डित या संशोधित न कर दिये जायें।"

व्याख्या 1 में प्रवृत्त कानूनों की परिभाषा की गई है और खण्ड (2) में इस प्रश्न के कुछ अंगों पर विचार किया गया था। यदि ये धारायें न भी होतीं तो यह साधारण सिद्धान्त तो बना रहता कि सम्बन्धित कानून उस समय तक प्रवृत्त रहेगा जब तक कि वह किसी कानून द्वारा विखण्डित न कर दिया जाये अथवा किसी न्यायालय द्वारा गैरकानूनी न घोषित कर दिया जाये। इसलिये जहां तक वर्तमान कानून को जारी रखने का सम्बन्ध है, ये शब्द अर्थात् 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्त्तमान कानून पर प्रभाव, अथवा) बेकार और अनावश्यक हैं। परन्तु यदि केवल शब्दाडम्बर की त्रुटि को ही दूर करना होता तो मैं इस संशोधन को उपस्थित न करता। इनका एक दूसरा प्रभाव भी पड़ता है और उसे मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महोदय जोर देकर बता चुके हैं। मेरे पास कई व्यक्तियों से और कई संस्थाओं से प्रार्थना-पत्र आये हैं और उन्होंने अपने तारों और पत्रों में यह कहा है कि ये शब्द निकाल दिये जाने चाहियें क्योंकि समझा यह जाता है कि यदि अनुच्छेद 8 विधान का अंग है तो उसी प्रकार अनुच्छेद 13 भी उसका अंग है। संख्याक्रम से अनुच्छेद 13 बाद को आता है और संख्या की दृष्टि से उसका महत्व अधिक है। यदि अनुच्छेद 8 कानून है तो अनुच्छेद 13 भी कानून है। वास्तव में अनुच्छेद 13 अनाश्रित है और यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि सभी वर्तमान कानून अनुच्छेद 8 के होते हुये भी जारी रहेंगे। लोगों को इसका भय है और इसीलिये डॉ. अम्बेडकर ने भी बाध्य होकर मेरे संशोधन संख्या 454 पर एक संशोधन अर्थात् संशोधन संख्या 49 उपस्थित किया है।

यह निर्वाचन और यह तर्क गलत हो सकता है। यह भले ही न्यायसंगत न हो, परन्तु यह उपस्थित तो किया ही जा सकता है। मेरे विचार से कानून को सरल होना चाहिये और उसे अस्पष्ट अथवा अगम्य न होना चाहिये। इसलिये इन दुष्टतापूर्ण और भ्रमपूर्ण शब्दों को निकाल दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त चूंकि इन शब्दों से लोग भ्रम में पड़ सकते हैं, मेरे विचार से जब तक इनको निकाला न जायेगा लोगों का भय दूर नहीं हो सकता है।

जब मैं 9 से 13 तक के और 26 तक के अनुच्छेदों को पढ़ता हूं और इन मूलाधिकारों को भी पढ़ता हूं, तो सच्ची बात यह है कि इनमें मैं एक ऐसे मूलाधिकार का अर्थात् मतदान के अधिकार का अभाव पाता हूं जो वास्तव में किसी भी देश के निवासी को प्राप्त होना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** इस समय इस विषय पर विचार नहीं हो रहा है।

पण्डित ठाकुरदास भार्गवः अनुच्छेद 15 पर भी विचार करते समय सभा इस निर्णय पर पहुंचेगी कि मूलाधिकारों में सबसे महत्वपूर्ण अधिकार को अर्थात् वैयक्तिक स्वातंत्र्य और जीवन के अधिकार को न्याय्य नहीं बनाया गया है और न उसका अनुच्छेद 13 में उल्लेख ही है। यदि इस सभा को देश की वर्तमान स्थिति का ध्यान है तो वह इस निर्णय पर पहुंचेगी कि चाहे इसे और जो कुछ कहा जाये परन्तु संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। भाषण और अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य उपखण्ड (2) से आयंत्रित कर दिया गया है। सौभाग्य से माननीय श्री मुन्शी ने आपसे कहा है कि 'राजद्रोह' शब्द निकाल दिया जाये। यदि इन शब्दों को अर्थात् 'affect the operation of any existing law, or' (किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा) को न निकाला गया तो इसका यह प्रभाव होगा कि राजद्रोह का वही अर्थ लगाया जायेगा जो अभी तक लगाया जाता रहा है, यद्यपि प्रिवी कौंसिल ने सन् 1945 ई. में इसके विरुद्ध निर्णय किया है। यदि वर्तमान कानून को अनुच्छेद 8 द्वारा अनियंत्रित तथा अशासित रूप में प्रवर्तन में रखा जायेगा तो स्थिति असह्य हो जायेगी और उसका निराकरण भी न हो सकेगा। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि भाषण और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में यदि आप वर्तमान कानूनों को, बिना उनकी किसी न्यायालय में जांच कराये हुये, जारी रखेंगे तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिसे भारत के नागरिक संतोषजनक न समझेंगे।

[पण्डित ठाकुरदास भार्गव]

इसी प्रकार इस समय आपको शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार प्राप्त है परन्तु सन् 1947 ई. में एक ऐसा कानून बनाया गया है जिसके अनुसार शांतिपूर्ण सम्मेलनों पर भी बिना चेतावनी दिये हुये आकाश से बम-वर्षो की जा सकती है। इस समय कई ऐसे प्रावधान प्रयुक्त हैं जो शांतिपूर्ण सम्मेलन के भी विरुद्ध हैं। यही बात सम्मेलनों और संघों पर निषेध के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मेरे माननीय मित्र को इसकी छूट है कि वे खण्डों पर सामान्य रूप से बोलें?

***उपाध्यक्ष:** मैं उनका ध्यान इसी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर रहा हूं।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि यह इस सभा की कार्यप्रणाली का निरादर करना है। यदि कोई सदस्य किसी संशोधन पर बोलें तो उन्हें अपने को उसी संशोधन तक सीमित रखना चाहिये। इस अवसर से लाभ उठा कर उन्हें सभी प्रकार की बातें न कहना चाहिये।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गव:** मैं संशोधन पर ही बोल रहा हूं परन्तु जिस प्रकार डॉ. अम्बेडकर बोलते हैं और अपने को व्यक्त करते हैं वह बहुत ही आपत्तिजनक है। वे खड़े होकर क्यों धमकी देकर या बढ़-चढ़ कर बोलते हैं?

***उपाध्यक्ष:** यह दिखाई देता है कि हर कोई आपे से बाहर हो गया है। केवल अध्यक्ष ही आपे में है। (*हंसी*) मैंने अभी श्री भार्गव को चेतावनी दी थी और जब डॉ. अम्बेडकर खड़े हुये तो उन्हें भी आगाह करने जा रहा था। मुझे इसका पूर्ण विश्वास है कि वे अपनी भावना में बह गये। मैं समझ नहीं पाता कि इतनी उत्तेजना क्यों उत्पन्न हो। वे कई दिनों से लगातार अत्यधिक काम करते रहे हैं। मैं उनकी स्थिति को समझता हूं और मैं आशा करता हूं कि सभा इस मामले को यहीं समाप्त कर देगी।

मुझे आशा है कि श्री भार्गव अब स्थिति को समझ गये हैं।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं केवल संशोधन पर ही बोलूंगा। परन्तु जिस समय कोई सदस्य किसी संशोधन पर बोल रहा हो उस समय सदस्यों को यह निर्णय करने का अधिकार नहीं है कि क्या प्रासंगिक है और क्या अप्रासंगिक है।

***उपाध्यक्षः** मैं यही कहने जा रहा था, परन्तु बीच में विघ्न डाल दिया गया।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** श्रीमान् मैं फिर यह कहूंगा कि जब तक ये आपत्तिजनक शब्द न निकाले जायेंगे और जब तक वर्तमान कानून को बिना उसकी किसी न्यायालय में जांच कराये हुये जारी रखा जायेगा तब तक देश की स्थिति बहुत ही असंतोषजनक रहेगी। मैं वर्तमान कानून की ओर यह बताने के लिये संकेत कर रहा हूं कि वह आपत्तिजनक है और यदि उसका कानून के समान ही प्रभाव रहा तो मूलाधिकारों को प्रदान करने से कोई लाभ न होगा। इसलिये मुझे मूलाधिकारों के सम्बन्ध में बोलने का अधिकार है। यदि आपकी आज्ञा न होगी तो मैं न बोलूंगा; परन्तु मेरी यह धारणा है कि मैंने जो कुछ कहा है और जो कुछ कह रहा हूं वह बिल्कुल प्रासंगिक है। (**माननीय सदस्यः** 'बोलिये'।) श्रीमान्, यदि मैं देश की स्थिति की ओर और इस ओर संकेत न करूं कि इस कानून से देश की तनातनी की वर्तमान स्थिति नहीं सुलझती है, तो मैं पूछता हूं कि मूलाधिकारों से ही क्या लाभ है?

***उपाध्यक्षः** केवल इसे स्मरण रखिये कि आप इस ओर साधारणतया संकेत कर सकते हैं और इसे अपने इस समय के भाषण का आधार नहीं बना सकते हैं। आप अपने तर्क को सिद्ध करने के लिये इन सब बातों को अपना साधन बना सकते हैं। परन्तु साथ ही इसका ध्यान रखें कि आवश्यक समय से अधिक समय न लें।

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं इसका अनुभव करता हूं कि व्यर्थ ही सभा का समय नष्ट करना पाप है। मैं यथासम्भव संयम से बोल रहा हूं। आपने जो सलाह दी है उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। यदि आप पसंद न करें तो मैं वर्तमान स्थिति की ओर भी संकेत न करूंगा।

परन्तु कुछ दिन पूर्व माननीय सरदार पटेल ने अपने एक दीक्षान्त भाषण में सारे देश से यह कहा कि खेत के मजदूर को और एक साधारण व्यक्ति को

[पण्डित ठाकुरदास भार्गव]

भारतीय स्वतंत्रता की सुखानुभूति प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि भारत स्वतंत्र है परन्तु यह सुखानुभूति आज किसी को प्राप्त नहीं है। यह क्यों? यदि मूलाधिकार प्रावहित हैं और लोगों को वे प्राप्त हैं तो उन्हें स्वतंत्रता की यह सुखानुभूति क्यों नहीं प्राप्त है? इसका कारण यह है कि वर्तमान कानूनों के सम्बन्ध में अनुच्छेद 8 में जो कुछ दिया गया है उसका इन आपत्तिजनक शब्दों द्वारा अपहरण हो गया है और इसलिये लोग हमारी बातों को कोई महत्व नहीं देते। जनसाधारण के नैराश्य का यही कारण है। इस विषय के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति की ओर संकेत करके मैं केवल इस पर जोर देना चाहता था कि वर्तमान स्थिति अत्यंत असंतोषप्रद है। मैं इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहूंगा।

'न्यायोचित' शब्द जोड़ने के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किया गया है, उसके सम्बन्ध में मैं सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि उस पर शांतिपूर्वक तथा उत्तेजनारहित होकर विचार किया जाये। हमने सरदार हुकुमसिंह और मि. महबूबअली बेग के भाषण सुने हैं। उन दोनों ने यह प्रश्न किया है कि यदि विधान-मण्डल को मूलाधिकारों के सारभूत तत्वों को ही आयंत्रित करने का अधिकार प्राप्त हुआ तो मूलाधिकारों की ही क्या गति होगी? यह सत्य है। क्या इस देश के लोगों तथा इसके निवासियों का भाग्य-विधाता अधिशासी-वर्ग होगा अथवा विधान-मण्डल अथवा न्यायालय? यही सब प्रश्नों का मूल प्रश्न है। यह प्रश्न उठाया गया है कि यदि विधान-मण्डल किसी अधिनियम का निर्माण करे तो क्या वह अन्तिम समझा जायेगा? यदि आप (3) से (6) तक के खण्डों पर विचार करें तो आप इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि यदि किसी कानून के उद्देश्य और कारण सम्बन्धी विवरण में यह कहा गया हो कि उसका उद्देश्य लोक-हितसाधन तथा लोक-व्यवस्था की रक्षा करना है तो आयंत्रणों के सम्बन्ध में न्यायालय इस देश के निवासियों की किसी प्रकार भी सहायता न कर सकेंगे। इसी प्रकार यदि किसी कानून की किन्हीं धाराओं के प्रवर्त्तन-खण्ड में अधिनियम में ही इस प्रकार के शब्द रख दिये गये तो कौन-सा न्यायालय यह कह सकेगा कि वास्तव में विधान-मण्डल को इस कानून को बनाने का अधिकार नहीं था। मेरा यह निवेदन है कि सर्वोच्च न्यायालय को ही अन्तिम निर्णायक होना चाहिये और उसी को हमारे देश के निवासियों के भाग्यों का अन्तिम रूप से फैसला करने का अधिकार होना चाहिये। इसलिये यदि आप इस स्थान पर 'न्यायोचित' शब्द रख दें तो प्रश्न हल हो जाता है और सभी संदेह दूर हो जाते हैं।

श्रीमान्, एक वक्ता महोदय ने यह पूछा था कि इस निर्जीव अनुच्छेद 13 में प्राण ही कहां है? मैं इसमें प्राण फूंक रहा हूं। यदि आप उसमें 'न्यायोचित' शब्द को रख दें तो 'न्यायालय को इस पर विचार करना होगा कि विचाराधीन अधिनियम लोक-हित का साधन करता है अथवा नहीं और इस पर भी विचार करना होगा कि विधान-मण्डल ने जो आयंत्रण रखे हैं वे उस समय की स्थिति में उचित, न्यायोचित और आवश्यक हैं अथवा नहीं। न्यायालयों को इस प्रश्न पर विचार करना होगा और विधान-मण्डल अथवा अधिशासी-वर्ग लोगों के मूलाधिकारों से खिलवाड़ न कर सकेंगे। न्यायालय ही अन्तिम रूप से इसका निर्णय करेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि हमें इन शब्दों में से अर्थात् 'न्यायोचित' 'उचित' अथवा 'आवश्यक' में से किसी शब्द को, जिसे यह सभा उचित समझे, प्रविष्ट करना चाहिये। मेरी यह धारणा है कि डॉ. अम्बेडकर 'न्यायोचित' शब्द के पक्ष में हैं। इसीलिये न्यायोचित पक्ष ग्रहण करने के लिये मैंने 'न्यायोचित' शब्द रखा है। अन्यथा यदि 'आवश्यक' अथवा 'उचित' शब्दों के समान कोई शब्द स्वीकार किये गये होते तो इनसे देश की स्वतंत्रता का किसी अंश में अपहरण न होता बल्कि उसमें वृद्धि ही होती। इसलिये मैं आदरपूर्वक यह प्रार्थना करता हूं कि जो संशोधन मैंने उपस्थित किया है उसे स्वीकार कर लिया जाये ताकि अनुच्छेद 13 न्याय्य हो सके। अन्यथा अनुच्छेद 13 निरर्थक हैं। वह इस समय पूर्ण रूप से न्याय्य नहीं है। इसलिये न्यायालयों को यह कहने का अधिकार न होगा कि आयंत्रण आवश्यक अथवा न्यायोचित हैं या नहीं। यदि न्यायालयों के सम्मुख कोई मुकदमें उपस्थित किये गये तो उन्हें केवल इसका निर्णय करना होगा कि आयंत्रण लोगों का हितसाधन करते हैं अथवा नहीं, परन्तु यह कानून के शब्दों द्वारा ही निश्चित रूप से स्पष्ट होगा। इसलिये न्यायालय इस सम्बन्ध में कुछ न कह सकेंगे कि किसी मूलाधिकार का खण्डन हुआ है अथवा नहीं। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि यदि आप 'न्यायोचित' शब्द का प्रविष्ट कर देंगे तो आप न्यायालयों को यह कहने का अन्तिम अधिकार दे देंगे कि जो आयंत्रण रखे गये हैं वे न्यायोचित, न्यायोचित रूप से आवश्यक हैं अथवा नहीं। इन शब्दों के साथ मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन संख्या 454 के सम्बन्ध में..."

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। क्या 454वां संशोधन उपस्थित किया जा चुका है?

***उपाध्यक्षः** आप कृपा करके बोलिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** "संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 454 के सम्बन्ध में–

(1) अनुच्छेद 13 के खण्ड (3), (4), (5) और (6) में 'any existing law' (कोई वर्तमान कानून) शब्दों के बाद 'in so far as it imposes, (जहां तक वह यह आरोपित करता है) शब्द प्रविष्ट किये जायें, और

(2) अनुच्छेद 13 के खण्ड 6 में 'in particular' (विशेषतया) शब्दों के बाद 'nothing in the said clause shall affect the operation of any existing law in so far as it prescribes or empowers any authority to prescribe, or prevent the State from making any law' (उक्त खण्ड की किसी बात से किसी वर्तमान कानून पर, जहां तक वह यह निर्धारित करता है अथवा किसी प्राधिकारी को यह निर्धारित करने की शक्ति देता है अथवा राज्य को किसी कानून को बनाने से रोकता है, प्रभाव नहीं पड़ेगा) शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***सय्यद अब्दुर रऊफ** (आसाम : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे एक औचित्य प्रश्न करना है। मेरे विचार से डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को संशोधन संख्या 454 पर संशोधन नहीं कहा जा सकता। संशोधन संख्या 454 का उद्देश्य यह है कि (2), (3), (4), (5) और (6) खण्ड निकाल दिये जायें, परन्तु डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का उद्देश्य उन खण्डों में कुछ शब्दों को प्रविष्ट करना है। इसलिये उसे संशोधन पर संशोधन के रूप में नहीं उपस्थित किया जा सकता।

***उपाध्यक्षः** मुझे यह प्रतीत होता है कि डॉ. अम्बेडकर मूल खण्डों को तो बनाये रखना चाहते हैं, परन्तु उनमें कुछ बातें जोड़ देना चाहते हैं। इसलिये मेरा निर्णय है कि औचित्य-दृष्टि से उनका संशोधन ठीक है।

***श्री एच.वी. कामतः** इससे मूल संशोधन का ही शून्यन हो जायेगा।

***उपाध्यक्षः** कृपया आप अपनी जगह पर बैठ जाइये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 8 पर तथा अनुच्छेद 13 के कुछ परादिकों में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों पर जो भाषण दिये गये हैं उनको सुन कर मुझे यह प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में बहुत भ्रम

है कि वर्तमान कानून के बारे में क्या किया जायेगा। मूल अनुच्छेद वास्तव में अनुच्छेद 8 है और उसमें स्पष्ट तथा निर्विवाद रूप से यह कहा गया है कि विधान के इस भाग में उल्लिखित मूलाधिकारों के विरोध में जो कोई भी वर्तमान विधि होगी उसका शून्यन हो जायेगा। यह एक आधारभूत बात है और मुझे इस सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि किसी निपुण वकील से अनुच्छेद 13 में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों का निर्वचन करने को कहा जायेगा तो वह यही कहेगा कि 'वर्तमान कानून' का अर्थ उस वर्तमान कानून से है जो मूलाधिकारों के विरुद्ध न हो। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन उपखण्डों में आये हुये 'वर्तमान कानून' शब्दों का यही अर्थ लगाया जायेगा। यह आवश्यक नहीं है कि जब कभी 'वर्त्तमान कानून' शब्द आयें तो अनुच्छेद 8 के प्रावधान को दुहराया जाय क्योंकि यह निर्वचन का नियम है कि कानून के निर्वचन के लिये तत्सम्बन्धी सभी धाराओं पर विचार किया जाये और उनका ऐसा अर्थ लगाया जाये कि एक धारा से दूसरी धारा का खण्डन न हो। इसलिये मसौदा-समिति न यह अनुभव किया कि उसने अनुच्छेद 8 में यह पूर्णतया प्रावहित कर दिया है कि कोई भी वर्तमान कानून, जहां तक वह मूलाधिकारों के विरुद्ध हो, समाप्त हो जायेगा। मसौदा-समिति ने यह आवश्यक नहीं समझा कि विभिन्न खण्डों में जहां कहीं 'वर्तमान कानून' शब्द आयें उनके आगे कोई विशेषण रखा जाये। मैं यह देखता हूं कि बहुत से लोग इस खण्ड को इस प्रकार नहीं पढ़ पाये हैं। 'वर्तमान कानून' शब्दों को पढ़ते समय वे यह भूल गये हैं कि अनुच्छेद 8 में क्या प्रावहित है। मैंने उपखण्ड (3), (4), (5) और (6) पर इसीलिये एक संशोधन उपस्थित किया है कि साधारण व्यक्ति को किसी प्रकार का भ्रम न हो। मैं इसे स्पष्ट करने के लिये अपने संशोधन के साथ उपखण्ड (3) को पढ़ूंगा:

"Nothing in sub-clause (b) of the said clause shall affect the operation of any existing law in so far as it imposes, or prevent the State from making any law, imposing in the interests of public order reasonable restrictions on the exercise of the right conferred by the said sub-clause."

[उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर न्यायोचित आयंत्रण आरोप करने वाली किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर, जहां तक वह इन्हें आरोपित करे, प्रभाव अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा।]

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मैंने श्री भार्गव का संशोधन स्वीकार कर लिया है और इसलिये 'न्यायोचित' शब्द जोड़ दिया है।

मेरे विचार से अब 'in so far as it imposes' (जहां तक वह इन्हें आरोपित करे), शब्दों को जोड़ने से विचारपूर्ण हो जाता है और इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि वर्तमान कानून को केवल उस सीमा तक परित्राण मिल जाता है जहां तक वह न्यायोचित आयंत्रणों को आरोपित करता है। मेरे विचार से इस संशोधन को स्थान देने के बाद अब यह समझने में कोई कठिनाई न होगी कि वर्तमान कानून का केवल सीमित रूप से परित्राण किया गया है। उसका तभी परित्राण हो सकेगा जब वह मूलाधिकारों के विरोध में न हो।

उपखण्ड (6) की शब्दावली भिन्न है क्योंकि उसका आशय उपखण्ड (3), (4) और (5) से भिन्न है। माननीय सदस्य उसे स्वयं पढ़ कर समझ लेंगे कि उसका अर्थ क्या है।

मेरे मित्र पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने मसौदा-समिति की बहुत बड़ी आलोचना की और उसे इसके लिये दोषी ठहराया कि वह वर्तमान कानूनों की रक्षा करने में बहुत आगे बढ़ गई है। मेरी समझ में नहीं आता कि वे मसौदा-समिति से क्या चाहते हैं। क्या वे यह चाहते हैं कि हम सीधे-सीधे यह कह दें कि जिस दिन से विधान अस्तित्व में आयेगा, सभी वर्तमान कानून समाप्त हो जायेंगे?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** जी नहीं, बिल्कुल यही नहीं चाहता।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** हमने यह कहा है कि जहां तक वर्तमान कानून विधान के प्रावधानों से असंगत होंगे उनका खण्डन हो जायेगा। निस्सन्देह इस देश का शासन इस पर निर्भर है कि इस समय प्रवृत्त कानून बने रहें। यदि वर्तमान कानूनों को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये तो सारा शासन छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

अब मैं अनुच्छेद 307 को उठाता हूं। उन्होंने यह कहा कि हमने ऐसे प्रावधान रखे हैं जिनके अनुसार जब तक वर्तमान कानूनों में संशोधन न हो वे प्रवर्तन में रहेंगे। मेरे विचार से जो व्यक्ति कानून को जानता है उसे यह समझना चाहिये कि जब विधान अस्तित्व में आ जायेगा, इस देश में कानून बनाने का एकाधिकार

संसद् को अथवा अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में स्थानीय विधान-मण्डल को प्राप्त होगा। यह स्पष्ट है कि यदि आप यह कह देते हैं कि जब तक संसद् कोई कानून न बनाये अब कोई कानून प्रवर्तन में न रहेगा और न उसका कोई प्रभाव होगा तथा न वह अधिकृत ही समझा जायेगा, तो क्या स्थिति होगी? स्थिति यह होगी कि पहले के विधान-मण्डलों ने, केन्द्रीय विधान-सभा ने अथवा प्रान्तीय विधान-सभाओं ने जो भी कानून बनाये हैं उनके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे क्योंकि संसद् अथवा स्थानीय विधान-मण्डलों द्वारा, जिनको ही इस विधान के अधीन कानून बनाने का अधिकार है, न निर्मित होने के कारण वे अधिकृत न समझे जायेंगे। इसलिये यह आवश्यक है कि विधान में इस आशय का एक प्रावधान होना चाहिये कि जो कोई कानून बन गये हैं वे केवल इस कारण समाप्त न हो जाने चाहिये कि संसद् ने उन्हें नहीं बनाया है। इसी कारण अनुच्छेद 307 को इस विधान में प्रविष्ट किया गया है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मेरा संशोधन, जो वर्तमान कानून के उस अंश पर जोर देता है जो मूलाधिकारों के होते हुये भी प्रवर्तन में रहेगा, उस कठिनाई को दूर कर देगा जिसे कई सदस्यों ने इस कारण अनुभव किया है कि उन्हें अनुच्छेद 13 को अनुच्छेद 8 के साथ पढ़ना कठिन प्रतीत हुआ है। इसलिये मेरे विचार से मेरे इस संशोधन से स्थिति स्पष्ट हो जाती है और मुझे आशा है कि इसे स्वीकार करने में सभा को कोई कठिनाई न होगी।

(संशोधन संख्या 454 पर संशोधन संख्या 50 उपस्थित नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 455, 469, 475 और 481 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** तब हम संशोधन संख्या 485 के पहले भाग को उठायेंगे। सभा इसे समझ सकती है कि विभिन्न संशोधनों पर मत लेने में जो समय लगता है उसे कम करने में मुझे बड़ी कठिनाई हो रही है।

***सय्यद अब्दुर रऊफ:** मैं यह चाहता हूं कि संशोधन के पहले भाग पर मत ले लिया जाये।

***उपाध्यक्ष:** तब हम दूसरे संशोधन-समूह अर्थात् 456, 472, 484 और 495वें संशोधनों को उठाते हैं।

(संशोधन संख्या 456, 472, 484 और 495 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** दूसरे समूह में संशोधन संख्या 457, 466, 473 और 494 आते हैं।

(संशोधन संख्या 457, 466, 473 और 494 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 458 पर आते है, जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफर इमाम के नाम से है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह मि. महबूबअली बेग के उपस्थित किये हुये संशोधन में आ जाता है।

***उपाध्यक्षः** फिर भी यह प्रस्तावक की इच्छा पर निर्भर है।

***मि. मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 13 के खण्ड (2) में 'sedition' (राजद्रोह) शब्द के बाद 'communal passion' (साम्प्रदायिक उत्तेजना) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, हम यह देखते हैं कि इस खण्ड के अधीन हम राज्य को अपमान-लेख; अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह और राज्य के विरुद्ध इसी प्रकार के अपराधों के सम्बन्ध में कुछ शक्तियां दे रहे हैं। मैं यह चाहता हूं कि 'राजद्रोह' शब्द के साथ ये शब्द अर्थात् 'साम्प्रदायिक उत्तेजना', भी जोड़ दिये जायें जिनका अर्थ किसी सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के विरुद्ध उभाड़ना, उत्तेजित करना है।

श्रीमान्, ये शब्द अर्थात् अपमान-लेख, अपमान-वचन, मानहानि, राजद्रोह, भारतीय दण्ड-संहिता में सामान्य रूप से पाये जाते हैं परन्तु सौभाग्य से अथवा दुर्भाग्य से इस संशोधन के शब्द उसमें नहीं आये हैं। इसका कारण सामान्य है। भारतीय दण्ड-संहिता और पुराने कानून एक ऐसी सरकार ने बनाये जो हमारे लिये विदेशी थी। अब वह समय आ गया है जब हमें अपने गुणों को तथा अपने दोषों को समझना चाहिये। हमें यह विदित है कि कुछ सम्प्रदायों के अन्य सम्प्रदायों के विरुद्ध आन्दोलन करने और उत्तेजना फैलाने से सारे देश को बहुत हानि हुई है। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह विचार है कि इन शब्दों को स्थान देना आवश्यक है। वास्तव में, मैं यह कहूंगा कि यदि अपने देश में, जो अब एक स्वतंत्र देश है,

आपस में सच्चा व्यवहार करना चाहें तो इन शब्दों को विधान में स्थान दिया जाना चाहिये। मैं डॉ. अम्बेडकर से तथा इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं और यह अपील करता हूं कि वे तर्कपूर्ण और विचारपूर्ण होकर इन शब्दों को प्रविष्ट कर लें।

अन्त में, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि श्री मुन्शी ने एक संशोधन उपस्थित किया है, परन्तु मैं कह नहीं सकता कि वह स्वीकार होगा अथवा नहीं। यदि यह सभा उस संशोधन को स्वीकार करे तो मेरा यह अनुरोध है कि उस संशोधन में, अथवा जहां कहीं उचित समझा जाये, इन शब्दों को भी प्रविष्ट किया जाये। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं।

***उपाध्यक्षः** अब हम संशोधन संख्या 459 पर आते हैं। यह मि. टामस के नाम से है। यह एक शाब्दिक संशोधन है और इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

अब हम 460 और 461वें संशोधनों तथा संशोधन संख्या 462 के दूसरे भाग को उठाते हैं। मैं संशोधन संख्या 461 के उपस्थित किये जाने की आज्ञा देता हूं क्योंकि यह तीनों संशोधनों में सब से अधिक विस्तृत है। यह श्री मुन्शी के संशोधन में आ जाता है। क्या 460वां संशोधन उपस्थित किया जा रहा है?

***पण्डित ठाकुरदास भार्गवः** मैं उसे नहीं उपस्थित करना चाहता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 462 । श्री कामत!

***श्री एच.वी. कामतः** यह संशोधन संख्या 461 में आ जाता है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 462, पहला भाग। मैंने अभी दूसरे भाग को उठाया था। पहला भाग बहुत कुछ शाब्दिक संशोधन है और इसलिये उसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

संशोधन संख्या 463 और 464 दो भिन्न व्यक्तियों द्वारा उपस्थित किये गये हैं, परन्तु उनका आशय समान है। संशोधन संख्या 464, जो श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 464 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर के संशोधन संख्या 463 का क्या होगा?

***ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफिर:** श्रीमान्, मैं उसे नहीं उपस्थित कर रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** तब हम संशोधन संख्या 467 और 474 को उठाते हैं। संशोधन संख्या 467 उपस्थित किया जा सकता है। वह श्री श्यामानन्दन सहाय के नाम से है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) में 'restrictions' (आयंत्रण) शब्द के बाद (हिन्दी में पहले) 'for a defined period' (निश्चित समय तक) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, सभा के सम्मुख इस संशोधन को उपस्थित करते हुये मेरे मस्तिष्क में सर्वोपरि यह बात है कि इन तीन स्वतंत्रताओं के सम्बन्ध में अर्थात् भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और पर्यटन-स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में, जिनके बारे में इतनी बातें कही जाती हैं, क्या हमने वह सब कर दिया है जिसकी हमसे प्रत्येक व्यक्ति को आशा थी? इस सभा में ही नहीं बल्कि इसके बाहर भी सभी लोगों की जो इच्छा है उसे दृष्टि में रखते हुये मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे इन खण्डों की शब्दावली पसंद नहीं आई। श्रीमान् मैं अनुच्छेद 13 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) की शब्दावली की ओर संकेत करूंगा। इस उपखण्ड में यह कहा गया है कि सभी नागरिकों को शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार होगा। यह एक मूलाधिकार है जिसे हम लोगों को इस विधान द्वारा प्रदान कर रहे हैं। हमें यह देखना चाहिये कि अनुच्छेद 13 के खण्ड (3) के प्रकाश, में, जो एक आयंत्रण खण्ड है, यह कैसा प्रतीत होता है। खण्ड (3) में कहा गया है कि उक्त खण्ड के उपखण्ड (ख) की किसी बात से लोक-व्यवस्था के हित में उक्त उपखण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रयोग पर आयंत्रण आरोप करने वाले किसी वर्तमान कानून के प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा किसी कानून के बनाने में राज्य के लिये अवरोध न होगा। श्रीमान्, हम उपखण्ड (ख) द्वारा केवल शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार दे रहे हैं। यह सम्मेलन का अधिकार सभी दशाओं में सम्मेलन का अधिकार नहीं हैं। पहला प्रतिबन्ध तो यह है कि शान्तिपूर्वक सम्मेलन हो और इसके अतिरिक्त एक दूसरा प्रतिबन्ध भी है। वह प्रतिबन्ध यह है कि सम्मेलन निरायुध होना चाहिये। इन प्रतिबन्धों के ऊपर उपखण्ड (3) में यह कह रहे हैं कि राज्य को एक और आयंत्रण-शक्ति प्राप्त होगी। इसके स्थान में तो मैं यह चाहता कि खण्ड (3) और (4) विधान के अंग

ही न होते। परन्तु यदि मसौदा-समिति की और अन्य लोगों की, जिन्होंने इस विषय पर सावधानी से विचार किया है, यह धारणा है कि शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन के सम्बन्ध में भी आयंत्रण आवश्यक है तो मैं आदरपूर्वक यह निवेदन करता हूं कि इस शक्ति को यह कहकर और भी आयंत्रित करना आवश्यक है कि इस शक्ति को आयंत्रित करने के लिये जो कोई भी कानून बनाया जाये वह निश्चित समय ही के लिये हो। मेरे विचार से यह सभा इससे सहमत न होगी कि किसी राज्य को कानूनों की किताब में किसी ऐसे स्थायी कानून को स्थान देना चाहिये जिससे शान्तिपूर्वक सम्मेलन का मूलाधिकार आयंत्रित हो जाता हो।

विधान में किसी विशेष सरकार के लिये किसी विशेष समय में और किसी विशेष परिस्थिति में केवल यह किया जा सकता है कि उसे इन दशाओं में इस अधिकार को आयंत्रित करने की शक्ति दी जा सकती है, परन्तु वह किसी निश्चित समय ही के लिये दी जा सकती है और, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि मेरे संशोधन का यही उद्देश्य है। इस खण्ड के सम्बन्ध में सबसे अच्छी व्याख्या यही की जा सकती है कि मसौदा-समिति ने इस विषय में अत्यधिक सावधानी दिखा कर गलती की है और इसलिये उसने सम्भवत: सरकार को बहुत कुछ प्रदान किया है और नागरिकों को बहुत कम प्रदान किया है। इस दृष्टि से, मेरा निवेदन है कि दोनों उपखण्डों में अर्थात् उपखण्ड (3) और (4) में 'निश्चित समय तक' शब्द रखे जायें ताकि यदि किसी समय किसी राज्य को इन अधिकारों को आयंत्रित करने के लिये कोई कानून बनाना पड़े तो वह उसे निश्चित समय तक ही प्रवर्तन में रखे। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि कोई राज्य इस प्रकार का कानून बना ले, तो यदि आवश्यक हो तो वह दुबारा ऐसा कानून बना ही नहीं सकता। परन्तु साथ ही हमें विधान में यह प्रावहित कर देना चाहिये कि हम किसी ऐसे आयंत्रक कानून को इस देश का स्थायी कानून होने की आज्ञा नहीं दे सकते। किसी राज्य को ऐसा कानून बनाने की शक्ति नहीं प्राप्त होनी चाहिये जिससे शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार स्थायी रुप से आयंत्रित हो जाये। मेरे विचार से किसी भी राज्य को, चाहे वह कितना ही लोकप्रिय और जनतंत्रात्मक क्यों न हो, इस प्रकार की व्यापक शक्ति प्रदान करना उचित न होगा। देश के उच्च हितों को ध्यान में रखते हुये, विशेषतया जब उसका यह निर्माण-काल है, राज्य को ऐसे मूलाधिकारों के सम्बन्ध में जैसे भाषण-स्वातंत्र्य, सम्मेलन-स्वातंत्र्य और पर्यटन-स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत शक्तियां दे देने से, मुझे विश्वास है, हानि ही होगी और इसका फल यह होगा कि किसी

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

स्वतंत्र देश के स्वच्छंद वातावरण के स्थान में यहां प्राण-अवरोधक तथा प्राण-शोषक वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। श्रीमान्, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूं और सभा से यह सिफारिश करता हूं कि यह स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 470 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 471 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि वह शाब्दिक है। संशोधन संख्या 476 और 477 का आशय समान है। मैं 476वें संशोधन के उपस्थित किये जाने की आज्ञा देता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (4) में 'the general public' (जन-सामान्य) शब्दों के स्थान में 'public order or morality' (लोक-व्यवस्था अथवा शील) शब्द रखे जायें।"

उस खण्ड में ये शब्द अनुपयुक्त हैं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 477 भी इसी के समान है। संशोधन संख्या 479, 480 और 486 का आशय समान है।

(संशोधन संख्या 479, 480 और 486 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 482 और 483 ।

(संशोधन संख्या 482 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** 483—सरदार हुकुमसिंह!

***सरदार हुकुम सिंहः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं किः

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'existing law' (वर्तमान कानून) शब्दों के बाद 'which is not repugnant to the spirit of the provisions of article 8' (जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों की भावना के विरोध में न हो) शब्द रखे जायें।"

माननीय डॉ. अम्बेडकर ने हमारी शंकाओं को ठीक ही समझा है। हमारी यह धारणा है कि जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं। उनमें से अधिकांश का उद्देश्य यही है। निस्संदेह हमें यह शंका है कि यदि इन अनुच्छेदों को, अर्थात् अनुच्छेद 8 और 13 को, अलग-अलग रखा जाये तो इनके विभिन्न अर्थ लगाये जा सकते हैं। डॉ. अम्बेडकर ने इस पर जोर दिया है कि यदि विधान के कोई विशेष अनुच्छेदों के बारे में किसी न्यायालय को किसी विषय के सम्बन्ध में अर्थ लगाना हो तो तत्सम्बन्धी सभी अनुच्छेदों पर विचार किया जायेगा। इस प्रकार अनुच्छेद 8 के प्रावधान सब पर लागू होंगे क्योंकि उसमें कहा गया है कि—"इस विधान के प्रारम्भ होने के सद्य:पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सब कानून, उस सीमा तक शून्य होंगे जिस तक कि वे इस भाग के प्रावधानों से असंगत हैं"। हमने इसे स्वीकार कर लिया है और हमारी यह धारणा है कि इसे स्पष्ट कर देना चाहिये कि जो भाग असंगत हैं वे असंगति की सीमा तक शून्य हो जायेंगे। यदि, जैसा कि डॉ. अम्बेडकर ने बताया है, यही उद्देश्य है तो इसे इस खण्ड में भी क्यों स्पष्ट नहीं कर दिया जाता। इसमें हानि ही क्या है? मेरी समझ में नहीं आता कि यदि हम इसे स्पष्ट कर दें कि ये प्रावधान अनुच्छेद 8 के अधीन हैं तो इससे क्या हानि होगी और किस प्रकार शब्दावली का सौन्दर्य बिगड़ जायेगा। यह स्वीकार करना होगा कि इस समय कुछ ऐसे कानून प्रयुक्त हैं जिनसे लोगों की स्वतंत्रता आयंत्रित हो जाती है। मैं पंजाब के भूमि-हस्तान्तरण अधिनियम का उदाहरण देता हूं। उसके अनुसार कुछ जातियां अपनी ही जाति के लोगों की भूमि खरीद सकती हैं, परन्तु अन्य जातियों के लोग उसे नहीं खरीद सकते। यदि इस विभेद का कोई आर्थिक आधार होता और यदि यह प्रावहित होता कि सभी छोटे कृषकों के अधिकारों का अभिरक्षण होगा और उनकी छोटी-छोटी भूमियों का हस्तान्तरण न हो सकेगा तो यह बात समझ में आने वाली थी और इस प्रकार के प्रावधान का स्वागत ही होता। परन्तु जब यह विभेद है तो हम भी यह अनुभव करते हैं कि जहां तक यह कानून अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) के प्रावधानों से असंगत है, इसका शून्यन हो जाना चाहिये। इसमें सम्पत्ति के अवापन, संधारण तथा उत्सर्जन की स्वतंत्रता दी गई है, परन्तु यदि यह भूमि-हस्तान्तरण अधिनियम अपने वर्तमान रूप में बना रहा और 'कृषक' की परिभाषा नहीं बदली गई तो कलह होगा और न्यायालय भी अनुचित अर्थ लगा सकते हैं। इसलिये डॉ. अम्बेडकर की व्याख्या के अनुसार यदि यही उद्देश्य है कि अनुच्छेद 8 के प्रावधान सभी पर लागू होंगे तो हमें इसे स्पष्ट कर देना चाहिये। इसीलिये मैंने यह

[सरदार हुकुमसिंह]

सुझाव रखा है कि 'वर्तमान कानून' शब्दों के बाद 'जो अनुच्छेद 8 के प्रावधानों की भावना के विरोध में न हों' शब्द रखे जायें। मेरा यही उद्देश्य है। मैं यह चाहता हूं कि यह स्पष्ट कर दिया जाये ताकि इस सम्बन्ध में कोई सन्देह न रहे।

***उपाध्यक्ष:** अब हम उठाते हैं संशोधन संख्या 485 का दूसरा भाग, जो सय्यद अब्दुर रऊफ के नाम से है और संशोधन संख्या 488 का पहला भाग, जो डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या और अन्य लोगों के नाम से है। दोनों में से बाद में कहा हुआ संशोधन अधिक विस्तृत है और वह उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 488 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस दशा में संशोधन संख्या 485 का दूसरा भाग, जो सय्यद अब्दुर रऊफ के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***सय्यद अब्दुर रऊफ:** श्रीमान् मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'State' (राज्य) शब्द के स्थान में 'Parliament' (संसद्) शब्द रखा जाये।"

श्रीमान्, उपखण्ड (घ), (ङ) और (च) में हमारे सबसे महत्वपूर्ण मूलाधिकार वर्णित हैं। परन्तु खण्ड (5) से हमारे अधिकांश अधिकारों का अपहरण हो जाता है क्योंकि राज्यों को यह शक्ति दी गई है कि यदि वे चाहें अथवा जब कभी वे चाहें इन अधिकारों को आयंत्रित अथवा संकुचित कर सकते हैं और इनका अपहरण भी कर सकते हैं। हमें स्मरण है कि 'राज्य' शब्द की परिभाषा में भारत के राज्य-क्षेत्र में अथवा भारत सरकार के नियंत्रण में स्थानीय अधिकारी भी सन्निहित हैं। ग्राम-पंचायतें, छोटी-छोटी नगर-समितियां, म्युनिसिपल्टियां और स्थानीय बोर्ड भी कुछ सीमा तक राज्य ही हो जाते हैं और इन राज्यों पर यह छोड़ दिया गया है कि वे इन बहुमूल्य मूलाधिकारों के सम्बन्ध में कार्यवाही करें। श्रीमान्, मैं आपके सामने एक उदाहरण रखूंगा। यदि आप थोड़ी देर के लिये यह मान लीजिये कि यदि राजनैतिक विचारों के कारण किसी गांव में अथवा किसी पंचायत के क्षेत्र में बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के बीच फूट पड़ जाये और यदि पंचायत बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर ले कि किसी विशेष क्षेत्र में अल्पसंख्यक स्वतंत्रता से न पर्यटन कर सकेंगे और न निवास कर सकेंगे और न अपनी सम्पत्ति का उत्सर्जन कर सकेंगे, तो कौन-सा कानून बहुसंख्यकों को

ऐसा करने से रोकेगा और कौन-सा कानून अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करेगा? चूंकि ये बहुमूल्य अधिकार हैं इसलिये किसी राज्य को इनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार न दिया जाना चाहिये। श्रीमान्, मेरे मतानुसार संसद् ही इन प्रश्नों पर संतोषजनक रूप से विचार कर सकती है। चूंकि छोटे-छोटे राज्यों के हाथ में, जिनमें ग्राम-पंचायतें भी होंगी, इस शक्ति को देना बहुत संकटपूर्ण होगा; इसलिए हमें बहुत सावधानी से विचार करना चाहिये। इसीलिये मैंने यह सुझाव रखा है कि 'राज्य' शब्द के स्थान में 'संसद्' शब्द रखा, जाये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 487, 489 और 490 का आशय समान है। संशोधन संख्या 487 उपस्थित किया जा सकता है।

(संशोधन संख्या 487 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 489 जो मि. मोहम्मद ताहिर और सय्यद जाफ़र इमाम के नाम से है।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'either' (अथवा) शब्द और 'or for the protection of the interests of any aboriginal tribe' (किसी आदिवासी जाति के हित-रक्षार्थ) शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में कोई भाषण देने नहीं जा रहा हूं, परन्तु केवल यह निवेदन करना चाहता हूं कि इन शब्दों के निकल जाने से इस खण्ड को सामान्य रूप प्राप्त हो जायेगा। किन्तु उसमें आदिवासी जातियों की रक्षा अवश्य ही सन्निहित है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि मसौदा-समिति का भी यही मत था, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि इस खण्ड में ऐसी शब्दावली क्यों रखी गई है। जो कुछ भी हो, मेरे विचार से अच्छा तो यही होगा कि इन शब्दों को उसी प्रकार निकाल दिया जाये जैसा मैंने सुझाया है।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 490 उसी संशोधन के समान है जो अभी उपस्थित किया जा चुका है और इसलिये उसे उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है।

संशोधन संख्या 488 का दूसरा भाग और संशोधन संख्या 491 का आशय समान है। संशोधन संख्या 491, जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है, उपस्थित किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (5) में 'aboriginal' (आदिवासी) शब्द के स्थान में 'scheduled' (अनुसूचित) शब्द रखा जाये।"

जब मसौदा-समिति मूलाधिकारों के प्रश्न पर विचार कर रही थी तो उस समय वन-जातियों के क्षेत्रों के सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त की गई थी उसने अपना प्रतिवेदन उपस्थित नहीं किया था और इसलिये मसौदा बनाते समय हमें 'आदिवासी' शब्द रखना पड़ा। बाद को हमने देखा कि वनजातियों के क्षेत्र-सम्बन्धी समिति ने भी 'अनुसूचित जातियां' शब्द प्रयोग किये थे और इसलिये इस विधान से जो अनुसूचियां संलग्न हैं उनमें हमने 'अनुसूचित जातियां' शब्द प्रयोग किये हैं। भाषा की एकरूपता की दृष्टि से 'आदिवासी' शब्द के स्थान में 'अनुसूचित' शब्द रखना आवश्यक है।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से इस संशोधन पर एक संशोधन है। वह सूची 1 का संशोधन संख्या 56 है जो श्री फूलसिंह के नाम से है।

(सूची 1 का संशोधन संख्या 56 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इसका अर्थ यह है कि इस संशोधन संख्या 491 का स्वरूप जैसे का तैसा बना रहा।

अब हम संशोधन संख्या 488 पर आते हैं।

(संशोधन संख्या 488 उपस्थित नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 13 के खण्ड (6) में 'public order, morality or health' (लोक-व्यवस्था, लोक-शील अथवा लोक-स्वास्थ्य) शब्दों के स्थान में 'the general public' (जन-सामान्य) शब्द रखे जायें।"

ये शब्द अर्थात् 'लोक-व्यवस्था, लोक-शील अथवा लोक-स्वास्थ्य' इस खण्ड के लिये अनुपयुक्त हैं।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** जनाब वाला, मेरा अमेंडमेंट नम्बर 500 हस्बज़ैल है–

'That after clause (6) of article 13, the following new clause be added:

'(7) The occupation of beggary in any form or shape for person having sound physique and perfect health whether major or minor is totally banned and any such practice shall be punishable in accordance with law.' "

जनाब वाला, मैंने यह तरमीम इसलिये पेश की है कि अगर हाउस इस तरमीम के साथ इत्तफाक करे तो यकीनन इसका नतीजा यह होगा कि हमारे मुल्क के अन्दर लेबर की जो डिफीकल्टीज़ हैं, वह एक हद तक बहुत ज्यादा सौल्व हो जाती है। हमारे मुल्क के अन्दर इण्डस्ट्रीज, जो कि वाकई बहुत जरूरी हैं, और बगैर लेबर के वह अक्सर जगहों में नाकाम रही हैं, वह एक हद तक कामयाब हो सकती हैं। इसके अलावा मैं यह अर्ज करूंगा कि हमारे मुल्क के अन्दर हजारों, लाखों नहीं बल्कि करोड़ों इन्सानों के दिल के अन्दर खुद्दारी, सैल्फ रेसपैक्ट का माद्दा पैदा हो जायगा। हम देखते हैं कि हमारे मुल्क के अन्दर बहुत से लोग जो अच्छे खासे तन्दुरुस्त लोग हैं, जो मेहनत कर सकते हैं, मेहनत से रोजी पैदा कर सकते हैं, वह आपको सड़कों पर भीख मांगते नज़र आयेंगे। उनसे अगर आप पूछें कि भाई तुम मेहनत कर सकते हो, अपनी मेहनत से अपनी परवरिश कर सकते हो, अपनी मेहनत से मुल्क को फायदा पहुंचा सकते हो, तो वह जवाब में यही कहेंगे कि साहब यह हमारा आबाई पेशा है और हम यह करने पर मजबूर हैं। मैं यह अर्ज़ करूंगा कि इस जमाने में दुनिया की सरज़मीन पर इतने मुल्क आबाद हैं, अगर आप नज़र उठाकर देखेंगे तो यह बदनुमा धब्बा सिर्फ हमारे ही मुल्क पर नज़र आयेगा। इस वजह से मैं यह चाहता हूं कि हमारे कान्स्टीट्यूशन में इसके मुतल्लिक एक ऐसा नमूना पेश किया जाये जो मुल्क के लिये बेहतर हो। बेशक वह लोग जो कि कुछ मजबूर है, बहुत से बदनसीब हमारे मुल्क में अन्धे हैं, लंगड़े हैं, हाथों और पांवों से मजबूर हैं, वह वाकई किसी हद तक इसके मुस्तहक हो सकते हैं। इनके वास्ते ख्वाह इनफरादी तौर पर या किसी दूसरी सूरत से भीख मांगना ठीक कहा जा सकता है। लेकिन इसके लिये भी मैं यह अर्ज़ करूंगा कि ऐसे लोगों की स्टेट ज़िम्मेवार हो और ऐसे लोगों के लिये कोई ऐसी अन्जुमन किसी ऐसे घर या किसी ऐसी जगह पर कायम की जाये, जो ऐसे लोगों की परवरिश कर सकें। लेकिन वह लोग जो तन्दुरुस्त हैं, अच्छे हैं तो

[श्री मोहम्मद ताहिर]

उनसे अपने मुल्क के अन्दर काम लेना चाहिये। हमारी लेबर प्राबलम बहुत हद तक इससे सौल्व हो जायगी। और करोड़ों इन्सानों ने जो भीख मांगने का तरीका अख्तियार कर लिया है वह भी बाज़ आ जायेंगे। और इससे सैल्फ रेस्पैक्ट यानी खुद्दारी का माद्दा भी पैदा हो जायगा। लिहाजा मैं उम्मीद करता हूं कि मेरी यह तरमीम डॉक्टर अम्बेडकर साहब मंजूर फरमायेंगे और हाउस भी इसको मंजूर करने में मदद करेगा। इन अलफ़ाज के साथ मैं यह तरमीम हाउस के सामने पेश करता हूं।

इसके पश्चात् परिषद् बृहस्पतिवार, 2 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः साढ़े नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।